दंसणमूलो धम्मो

आत्मधर्म

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) का मुखपत्र

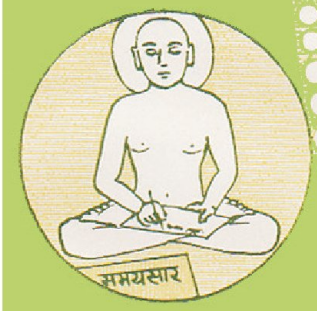

मैं शुद्ध, बुद्ध, अविरुद्ध, एक,
पर-परिणति से अप्रभावी हूँ।
आत्मानुभूति से प्राप्त तत्त्व,
मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ॥

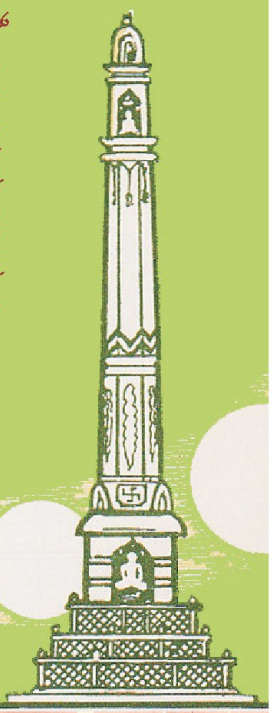

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

वर्ष ३४ : अंक ४ [४००] अक्टूबर, १९७८

आत्मधर्म [४००]

[हिन्दी, गुजराती, मराठी तथा कन्नड़ — इन चार भाषाओं में प्रकाशित
जैन समाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक]

संपादक :
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

प्रबंध संपादक :
अखिल बंसल

कार्यालय :
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)

शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे

मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर

क्या

१ जिस विधि कीने करम चकचूर....
२ सर्वजीव हैं सिद्धसम....
३ संपादकीय : उत्तम ब्रह्मचर्य
४ सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं
[समयसार प्रवचन]
५ कर्ता-भोक्ता
[नियमसार प्रवचन]
६ द्रव्यसंग्रह प्रवचन
७ ज्ञान-गोष्ठी
८ महापर्व दशलक्षण समाचार

पर्वराज दशलक्षण के समाचार विशेष होने से इस अंक में पाठकों के पत्र नहीं दे पाये, संपादकीय के पेज कम करने पड़े, तथ द्रव्यसंग्रह का कुछ भाग बारीक टाइप में देना पड़ा है; एतदर्थ क्षमाप्रार्थी हैं।

– प्रबंध संपादक

आत्मधर्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३४ [४००] अंक : ४

जिस विधि कीने करम चकचूर—सो विधि बतलाऊँ
तेरा भरम मिटाऊँ वीरा, जिस विधि कीने करम चकचूर।टेर॥
सुनो सँत अर्हंत पंथ जन, स्वपर दया जिस घट भरपूर।
त्याग प्रपंच निरीह करै तप, ते नर जीते करम करूर।
जिस विधि कीने करम चकचूर..... ॥१॥
तोड़े क्रोध निठुरता अघ-नग, कपट क्रूर सिर डारी धूर।
असत अंग कर भंग बतावे, ते नर जीते करम करूर।
जिस विधि कीने करम चकचूर..... ॥२॥
लोभ-कंदरा के मुख में भर, काठ असंजम लाय जरूर।
विषय कुशील कुलाचल फूँके, ते नर जीते करम करूर॥
जिस विधि कीने करम चकचूर..... ॥३॥
परम क्षमा मृदुभाव प्रकाश, सरलवृत्ति निरवांछक पूर।
धर संजम तप त्याग जगत सब, ध्यावैं सतचित केवल नूर॥
जिस विधि कीने करम चकचूर..... ॥४॥
यह शिवपंथ सनातन संतो, सादि अनादि अटल मशहूर।
या मारग 'नैनानंद' हु पायो, इस विधि जीते करम करूर॥
जिस विधि कीने करम चकचूर..... ॥५॥

बीस वर्ष पहले

[इस स्तंभ में आज से बीस वर्ष पहले आत्मधर्म (हिंदी) मे प्रकाशित महत्त्वपूर्ण अंशों को प्रकाशित किया जाता है।]

सर्व जीव हैं सिद्धसम, जो समझें वे होय

किसी निर्धन मनुष्य को कोई बड़ा राज्य मिलने का प्रसंग उपस्थित हो जाये और वहाँ वह कहे कि 'अरे हम तो गरीब हैं, हममें राज्य लेने या राजा होने की पात्रता कहाँ से हो सकती है'—तो वह पुण्यहीन है। जो पुण्यवान है, वह तो तुरंत स्वीकार करता है कि हम राजा होने के पात्र हैं; हम अपनी शक्ति से राज्य का संचालन करेंगे।

उसीप्रकार यहाँ निर्धन अर्थात् अज्ञानीजीव को आचार्यदेव उसका चैतन्यराज मिलने की बात सुनाते हैं कि 'अरे जीव! तुझ में केवलज्ञान का महान पद लेने की शक्ति है; ज्ञान-साम्राज्य को प्राप्त करके उसे संभालने की सामर्थ्य है।' वहाँ जो ऐसा कहता है कि 'अरे! हम तो अज्ञानी, पाप में डूबे हुए हैं; हममें केवलज्ञान प्राप्त करने या परमात्मा होने की पात्रता कैसे हो सकती है?'—तो वह जीव पुरुषार्थहीन है। और जो पुरुषार्थी है, आत्मा का उल्लासी है; वह तो ऐसी बात सुनकर तुरंत स्वीकार करता है कि 'अहो! हमारा आत्मा केवलज्ञान लेने की पात्रता वाला है, हमारी पर्याय में केवलज्ञान-साम्राज्य संभालने की शक्ति है; हम अपनी शक्ति से केवलज्ञान प्राप्त करेंगे।'

इसप्रकार आत्मशक्ति का विश्वास करके उसमें लीनता द्वारा धर्मीजीव केवलज्ञान-साम्राज्य प्राप्त करता है। समस्त जीवों में ऐसी शक्ति है; उसे जो स्वीकार करता है, वही तद्रूप परिणमित होता है।

— आत्मधर्म, वर्ष १५, अंक १७३, सितम्बर १९५९, पृष्ठ २३५

सम्पादकीय

उत्तम ब्रह्मचर्य | एक परिशीलन

[गतांक से आगे]

इंद्रियों की वृत्ति बहिर्मुखी है—क्योंकि वे अपने को नहीं, पर को जानने-देखने में निमित्त हैं। सभी इंद्रियों के दरवाजे बाहर को ही खुलते हैं, अंदर को नहीं। आँख से आँख दिखाई नहीं देती, आँख के भीतर क्या है, यह भी दिखाई नहीं देता; पर बाहर क्या है, यह दिखाई देता है। इसीप्रकार रसना भी अंदर का स्वाद नहीं लेती, वरन् बाहर से आनेवाले पदार्थों को चखती है। घ्राण भी क्या भीतर की दुर्गंध सूँघ पाती है? जब वही दुर्गंध किसी रास्ते से निकलकर नाक में बाहर से टकराती है, तब नाक उसे ग्रहण कर पाती है। कान भी बाहर की ही सुनते हैं। स्पर्शन भी मात्र बाहर की सर्दी-गर्मी आदि के प्रति सतर्क दिखाई देती है। इसप्रकार पाँचों ही इंद्रियाँ बहिर्मुख वृत्तिवाली हैं।

बहिर्मुखी वृत्तिवाली एवं रूपरसादि की ग्राहक इंद्रियाँ अंतर्मुखी वृत्ति का विषय एवं अरस अरूपी आत्मा को जानने में सहायक कैसे हो सकती हैं? यही कारण है कि इंद्रियभोगों के समान ही इंद्रियज्ञान भी ब्रह्मचर्य में साधक नहीं, बाधक ही है।

लोग कहते हैं :— 'झूठा है संसार, आँख खोलकर देखो'।

पर मैं तो यह कहना चाहता हूँ — 'सांचा है आत्मा, आँख बंद करके देखो'।

आत्मा आँखें खोलकर देखने की वस्तु नहीं, अपितु बंद करके देखने की चीज़ है। आँखों से ही क्या, पाँचों इंद्रियों से उपयोग हटाकर अपने में ले जाने से आत्मा दिखाई देता है।

फिर भी जब इंद्रिय के भोगों के त्याग की बात करते हैं तो जगत कहता है—ठीक है, इंद्रियभोग त्यागने योग्य ही हैं, आपने बहुत अच्छा कहा। पर जब यह कहते हैं कि इंद्रियज्ञान भी तो आत्मानुभूतिरूप ब्रह्मचर्य में सहायक नहीं; तो सामान्यजन एकदम भड़क जाते हैं; समाज में खलबली मच जाती है। कहा जाता है—'तो क्या हम आँख से देखें भी नहीं, शास्त्र

भी नहीं पढ़ें ?' और न जाने क्या-क्या कहा जाने लगता है। बात को गहराई से समझने की कोशिश न करके आरोप-प्रत्यारोप लगाये जाने लगते हैं। पर भाई! काम तो वस्तु की सही स्थिति समझने से चलेगा, चीखने-चिल्लाने से नहीं।

अल्पज्ञ आत्मा एक समय में एक को ही जान सकता है, एक में ही लीन हो सकता है। अत: जब यह पर को जानेगा, पर में लीन होगा; तब अपने को जानना, अपने में लीन होना संभव नहीं है। इंद्रियों के माध्यम से पर को ही जाना जा सकता है, पर में ही लीन हुआ जा सकता है। इनके माध्यम से न तो अपने को जाना ही जा सकता है, और न अपने में लीन ही हुआ जा सकता है। अत: इंद्रियों के द्वारा परपदार्थों को भोगना तो ब्रह्मचर्य का घातक है ही, इनके माध्यम से बाहर का जानना-देखना भी ब्रह्मचर्य में बाधक ही है।

इसप्रकार इंद्रियों के विषय—चाहें वे भोग्यपदार्थ हों, चाहे ज्ञेय पदार्थ; ब्रह्मचर्य के विरोधी ही हैं; क्योंकि वे आखिर हैं तो इंद्रियों के विषय ही। इंद्रियों के दोनों प्रकार के विषयों में उलझना, उलझना ही है; सुलझना नहीं। सुलझने का उपाय तो एक आत्मलीनतारूप ब्रह्मचर्य ही है।

यहाँ एक प्रश्न संभव है कि जब इंद्रियज्ञान आत्मज्ञान में साधक नहीं है तो फिर शास्त्रों में ऐसा क्यों लिखा है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं आत्मलीनतारूप सम्यक्चारित्र अर्थात् ब्रह्मचर्य सैनी पंचेन्द्रिय को ही होता है ?

इसका आशय यह नहीं कि आत्मज्ञान के लिये इंद्रियों की आवश्यकता है, पर यह है कि ज्ञान का इतना विकास आवश्यक है कि जितना सैनी पंचेन्द्रियों के होता है। यह तो ज्ञान के विकास का नाप है।

यद्यपि यह पूर्णत: सत्य है कि सैनी पंचेन्द्रिय जीवों को ही धर्म का आरंभ होता है; तथापि यह भी पूर्णत: सत्य है कि इंद्रियों से नहीं, इंद्रियों के जीतने से, उनके माध्यम से काम लेना बंद करने पर धर्म का आरंभ होता है।

दूसरे जब यह आत्मा, आत्मा में लीन नहीं होगा तो किसी न किसी इंद्रिय के विषय में लीन होगा; पर पाँचों इंद्रियों के विषय में भी यह एक साथ लीन नहीं हो सकता, एक समय में उनमें से किसी एक में ही लीन होगा। इसीप्रकार पाँचों इंद्रियों के विषयों को एक साथ जान भी नहीं सकता; क्योंकि इंद्रियज्ञान की प्रवृत्ति क्रमश: ही होती है, युगपत् नहीं। चाहे इंद्रियों का

भोगपक्ष हो या ज्ञानपक्ष—दोनों में क्रम पड़ता है। जब हम ध्यान से कोई वस्तु देख रहे हों तो कुछ सुनाई नहीं पड़ता। इसीप्रकार यदि ध्यान से सुन रहे हों तो कुछ दिखाई नहीं देता। पर इस चंचल उपयोग का परिवर्तन इतनी शीघ्रता से होता है कि हमें लगता है हम एकसाथ देख—सुन रहे हैं, पर ऐसा होता नहीं।

अब जिसके पाँच इंद्रियाँ हैं वह यदि आत्मा में उपयोग को नहीं लगाता है तो उसका उपयोग पाँचों इंद्रियों के विषयों में बँट जावेगा, पर जिसके चार ही इंद्रियाँ हैं उसका उपयोग चार इंद्रियों के विषयों में ही बँटेगा। इसप्रकार तीन इंद्रिय जीव का तीन इंद्रियों में और दो इंद्रिय जीव का दो इंद्रियों में बँटेगा। पर एक इंद्रिय जीव का उपयोग एवं भोग बँटेगा ही नहीं, स्पर्शन इंद्रिय के विषय में ही अबाधरूप से उलझा रहेगा।

इस तरह जब उपयोग आत्मा में नहीं रहता है तब इंद्रियों के विषय में बँट जाता है। आत्मा तो एक ही है, उपयोग का उसमें रहने पर बँटने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। जब वह सैनी पंचेन्द्रिय हो जाता है तब बहिर्मुखी उपयोग पंचेंद्रियों के विषयों में बँट जाने से कमजोर हो जाता है।

इस स्थिति में ज्ञान के विकसित होने एवं इंद्रियों के उपयोग की शक्ति बँटी हुई होने से आत्मज्ञान होने की शक्ति प्रकट हो जाती है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि पंचेन्द्रियों के ज्ञेय एवं भोग—दोनों प्रकार के विषयों के त्यागपूर्वक आत्मलीनता ही वास्तविक अर्थात् निश्चयब्रह्मचर्य है।

अंतरंग अर्थात् निश्चयब्रह्मचर्य पर इतना बल देने का तात्पर्य यह नहीं है कि स्त्री-सेवनादि के त्यागरूप बाह्य अर्थात् व्यवहारब्रह्मचर्य उपेक्षणीय है। यहाँ निश्चयब्रह्मचर्य का विस्तृत विवेचन तो इसलिये किया गया है कि—व्यवहारब्रह्मचर्य से तो सारा जगत परिचित है, पर निश्चयब्रह्मचर्य की ओर जगत का ध्यान ही नहीं है।

जीवन में दोनों का सुमेल होना आवश्यक है। जिसप्रकार आत्मरमणतारूप निश्चयब्रह्मचर्य की उपेक्षा करके मात्र कुशीलादि सेवन के त्यागरूप व्यवहारब्रह्मचर्य को ही ब्रह्मचर्य मान लेने के कारण उल्लिखित अनेक आपत्तियाँ आती हैं, उसीप्रकार विषयसेवन के त्यागरूप व्यवहारब्रह्मचर्य की उपेक्षा से भी अनेक प्रश्न उठ खड़े होंगे।

जैसे—उपदेशादि में प्रवृत्त भावलिंगी संतों को भी तात्कालिक आत्मरमणतारूप प्रवृत्ति के अभाव में ब्रह्मचारी कहना संभव न होगा; फिर तो मात्र सदा ही आत्मलीन केवली ही ब्रह्मचारी कहला सकेंगे। यदि आप कहें कि उनके जो आत्मरमणतारूप ब्रह्मचर्य है, उसका उपचार करके तब भी उन्हें ब्रह्मचारी मान लेंगे जबकि वे उपदेशादि क्रिया में प्रवृत्त हैं। तो फिर किंचित् ही सही, पर आत्मरणता के होने से अविरत सम्यग्दृष्टि को भी ब्रह्मचारी मानना होगा, जो कि उचित प्रतीत नहीं होता; क्योंकि फिर तो छ्यानवें हजार पत्नियों के रहते चक्रवर्ती भी ब्रह्मचारी कहा जायेगा।

अत: ब्रह्मचारी संज्ञा स्वस्त्री के भी सेवनादि के त्यागरूप व्यवहारब्रह्मचर्य के ही आधार पर निश्चित होती है। फिर भी आत्मरमणतारूप निश्चयब्रह्मचर्य के अभाव में मात्र स्त्रीसेवनादि के त्यागरूप ब्रह्मचर्य वास्तविक ब्रह्मचर्य नहीं है।

पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक के अनंतानुबंधी एवं अप्रत्याख्यान कषायों के अभावपूर्वक जो सातवीं प्रतिमा के योग्य निश्चयब्रह्मचर्य होता है, उसके साथ स्वस्त्री के सेवनादि के त्यागरूप बुद्धिपूर्वक जो प्रतिज्ञा होती है, वही वास्तव में व्यवहारब्रह्मचर्य है।

इसप्रकार जीवन में निश्चय और व्यवहारब्रह्मचर्य का सुमेल आवश्यक है।

पूजनकार ने दोनों की ही संतुलित चर्चा की है—

शीलबाड़ि नौ राख, ब्रह्मभाव अंतर लखो।
करि दोनों अभिलाख, करहु सफल नरभव सदा॥

हमें अपने शील की रक्षा नववाड़पूर्वक करना चाहिये तथा अंतर में अपने आत्मा को देखना-अनुभवना चाहिये। दोनों ही प्रकार के ब्रह्मचर्य का अभिलाषी होकर मनुष्यभव का वास्तविक लाभ लेना चाहिये।

जिसप्रकार खेत की रक्षा बाड़ लगाकर करते हैं, उसीप्रकार हमें अपने शील की रक्षा नौ वाड़ों से करना चाहिये। जितना अधिक मूल्यवान माल (वस्तु) होता है, उसकी रक्षा-व्यवस्था उतनी ही अधिक मजबूत करनी पड़ती है। अधिक मूल्यवान माल की रक्षा के लिये मजबूती के साथ-साथ एक के स्थान पर अनेक बाड़ें लगाई जाती हैं।

हम रत्नों को कहीं जंगल में नहीं रखते। नगर के बीच में—मजबूत मकान के भी भीतर बीचवाले कमरे में लोहे की तिजोड़ी में तीन-तीन ताले लगाकर रखते हैं। शील भी एक रत्न है, उसकी भी रक्षा हमें नौ-नौ वाड़ों से करनी चाहिये। हम काया से कुशील का सेवन नहीं करें, कुशीलपोषक वचन भी न बोलें, मन में भी कुशीलसेवन के विचार न उठने दें। ऐसा न हम स्वयं करे, न दूसरों से करावें, और न इसप्रकार के कार्यों की अनुमोदना ही करें।

इसप्रकार यद्यपि शास्त्रों में भी निश्चयब्रह्मचर्य का सहचारी जानकर स्त्रीसेवनादि के त्यागरूप व्यवहारब्रह्मचर्य की प्रर्याप्त चर्चा की गई है; तथापि आत्मरमणतारूप निश्चयब्रह्मचर्य के बिना मुक्ति के मार्ग में उसका विशेष महत्त्व नहीं है। निश्चयब्रह्मचर्य के बिना वह अनाथ-सा ही है। [शेष अगले अंक में]

आवश्यक सूचना

जनवरी / फरवरी, १९७९ में ली जानेवाली परीक्षाओं के लिये प्रवेशफार्म भरकर भेजने की अंतिम तिथि १-११-७८ है। खाली फार्म सभी संबंधित संस्थाओं को भेज दिये गये हैं। जिन्हें न मिले हों वे तुरंत सूचित करें तथा अंतिम तिथि से पूर्व भरकर अवश्य भेज दें।

इसके बाद विलंब शुल्क सहित १५-११-७८ तक ही फार्म स्वीकार किये जायेंगे।

मंत्री, श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड, ए-४, बापूनगर, जयपुर-३०२००४ (राज०)

आवश्यकताएँ —

(१) आवश्यकता है एक ऐसे विद्वान की जो जैन पाठशाला में धर्म पढ़ा सके एवं स्वाध्याय मंडल में लोगों को धर्म लाभ दे सके। श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड जयपुर द्वारा प्रशिक्षित अध्यापक को प्रथमिकता दी जाएगी। वेतन योग्यतानुसार।

— **श्रेयांसकुमार जैन,** मंत्री, श्री पद्मकीर्ति जैन विद्यामंदिर, चंदेरी (म.प्र.)

(२) आवश्यकता है एक ऐसे विद्वान की जो जैन पाठशाला में धर्म पढ़ा सके। शास्त्र प्रवचन तथा पूजन में योग्यता वाले सज्जन को प्राथमिकता दी जायेगी। शैक्षणिक योग्यता एवं न्यूनतम स्वीकार्य वेतन लिखें।

— **पी. सी. जैन,** जैन सदन, गाँधीनगर, इटारसी (म.प्र.)

(३) आवश्यकता है एक ऐसे विद्वान की जो स्थानीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला में धर्म पढ़ा सके। श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड जयपुर द्वारा प्रशिक्षित अध्यापक को प्राथमिकता दी जाएगी। वेतन २५०) रुपये माह के लगभग।

— **किशोरीलाल जैन,** मंत्री, दि० जैन समाज, मु०पो० बकस्वाहा, जिला छतरपुर (म.प्र.)

सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं

परम पूज्य आचार्य कुन्दकुन्द के सर्वोत्तम ग्रंथराज समयसार की सोलहवीं गाथा पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथा इसप्रकार है—

दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।
ताणि पुण जाण तिण्णि वि अप्पाणं चेव णिच्छयदो ॥१६॥

साधु पुरुष को दर्शन, ज्ञान और चारित्र सदा सेवन करने योग्य हैं, और उन तीनों को निश्चय से एक आत्मा ही जानो।

यह आत्मा जिस भाव से साध्य और साधन होता है, उस भाव से ही नित्य सेवन करनेयोग्य है। पुरुषार्थ द्वारा कर्म का क्षय करके प्रकट होनेवाले पूर्ण निर्मलभाव साध्यभाव हैं और अपूर्ण निर्मलदशा साधकभाव है। दोनों भावों का ज्ञान करे, परंतु निर्मल साध्यभाव तो शुद्ध आत्मा के आश्रय से ही प्रकट होता है।

प्रवचनसार गाथा ९४ में साधु की व्याख्या करते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र को साधे, वह साधु है। लोग पर्याय की अपेक्षा कथन करने पर समझ जाते हैं इसलिये पर्याय की अपेक्षा कहते हैं कि आत्मा दर्शन-ज्ञान-चारित्र से सेवनेयोग्य है, वास्तव में सेवन तो आत्मा का करना है।

दर्शन-ज्ञान-चारित्र को साधना आत्मव्यवहार है। दया, दानादि मनुष्यव्यवहार है तथा स्वरूप की दृष्टि-ज्ञान-रमणतारूप अविचलित चेतना विलास आत्मव्यवहार है। परमार्थ वचनिका में पंडित बनारसीदासजी कहते हैं कि लोग अध्यात्म का व्यवहार तो जानते नहीं हैं और आगम के व्यवहार में ही संतुष्ट हो गये हैं। निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अध्यात्म का व्यवहार है, आत्मा की पर्याय होने से यह आत्मा ही है, अन्य वस्तु नहीं।

आत्मा का यथार्थ स्वरूप पहिचान कर उसमें एकाग्र होना मोक्षमार्ग है। आत्मा की पूर्ण निर्मलदशा साध्य और अपूर्ण निर्मलदशा साधक है। साध्य और साधक दोनों भाव आत्मा में

अभेद होने से प्रकट होते हैं। इसलिये कहा है कि जिस भाव से आत्मा साध्य और साधन हो अर्थात् अभेदद्रव्य में झुके, उस भाव से आत्मा सेवन करनेयोग्य है।

आत्मा निर्विकल्प श्रद्धा-ज्ञान-चारित्ररूप भाव से साध्य-साधन होता है। शरीर की क्रिया तथा रागादि साध्य या साधन नहीं होते। गुण-भेद भी साध्य-साधन नहीं हैं। अभेदभाव से आत्मा की सेवा करते ही आत्मा साध्य-साधन होता है।

उपदेश में ऐसा कहा जाता है कि ज्ञान-दर्शन चारित्र की सेवा करो, परंतु वास्तव में तो ये तीनों आत्मा के ही आश्रय से होते हैं; इसलिये अभेद आत्मा ही सेवन करनेयोग्य है।

पानी में उष्णता प्रत्यक्ष है, उसका लक्ष्य गौण करके शीतलस्वभाव का लक्ष्य करके उसे शीतल करने की क्रिया प्रारंभ करने पर उसमें आंशिक शीतलता प्रकट होती है। शक्तिरूप से उसमें परिपूर्ण शीतलता भरी है। उसीप्रकार आत्मा की वर्तमान अवस्था में परनैमित्तिक रागादि को गौण करके पूर्ण निर्मलस्वभाव के लक्ष्य के बल से प्रकट होनेवाले आंशिक निर्मल श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र द्वारा निर्मलस्वरूप ही सेवन करनेयोग्य है।

यथार्थ प्रतीति में पूर्णस्वभाव की श्रद्धा और उसका लक्ष्य हो, उसके साथ ही पूर्णभाव प्रकट हो जाये तो बीच में साधकदशा अर्थात् मोक्षमार्ग ही न आये। किंतु ऐसा नहीं होता। पूर्ण निर्मलता प्रकट होने से पूर्व बीच में मोक्षमार्ग आये बिना नहीं रहता।

निर्मल मोक्षमार्गरूप पर्याय को साधन कहना भी व्यवहार है, निश्चय से तो अभेद आत्मा ही साधन है। अभेद आत्मा के आश्रय से ही साध्य और साधनरूप भाव प्रकट होते हैं। मोक्षमार्ग या मोक्ष में अभेदरूप आत्मा के अतिरिक्त अन्य किसी का अवलंबन नहीं रहता। बीच में व्यवहाररत्नत्रयरूप शुभराग आता है, परंतु वह भी साधन नहीं है। बाह्य वज्रवृषभनाराचसंहनन से भी मोक्षमार्ग नहीं होता, परंतु अभेद आत्मा के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रकट होता है।

व्यवहारत्नत्रय की तो यहाँ बात ही नहीं है, वह तो बंध का कारण है। यहाँ तो निश्चय-सम्यग्दर्शन- ज्ञान-चारित्र के भेदरूप व्यवहार कहा कि दर्शन-ज्ञान-चारित्र का सेवन करना चाहिये। शुभराग तो असद्भूतव्यवहार है तथा निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र सद्भूतव्यवहार है। ये तीनों आत्मा की ही पर्यायें हैं, अतः परमार्थ से आत्मा ही हैं, अतः एक आत्मा ही सेवितव्य है।

परिपूर्ण, एकरूप, त्रिकालस्थाई वस्तु में शक्तिरूप से भरी हुई पूर्ण निर्मल अवस्था और वर्तमान में अपूर्ण अवस्था ऐसे दो भेदज्ञान में प्रतीत होते हैं; किंतु श्रद्धा का ध्येय अर्थात् साधन का साध्य अखंडस्वरूप ही है।

ज्ञान, साध्य और साधक दोनों भावों को जानते हुए भी मात्र निश्चयस्वरूप का ही सेवन करता है अर्थात् एकरूप आत्मस्वभाव का लक्ष्य करता है। निश्चयस्वभाव के बल से अपूर्णपर्याय पूर्ण निर्मल हो जाती है। 'मैं व्यवहार के भेद में न रुकता हुआ पराश्रय के सर्व भेदों को नाश करनेवाला हूँ'—ऐसे नि:शंकभाव से अखंडस्वभाव के बल से, ज्ञानहीन-पर्याय को तोड़कर अल्पकाल में साध्यरूप पूर्ण मोक्षदशा प्रकट करता है।

समझ में न आये तो धैर्य से समझना चाहिये क्योंकि समझ के मार्ग पर ही सत्य का आगमन होता है, विपरीत मार्ग से कभी भव का अंत नहीं आयेगा। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के विषयभूत आत्मस्वभाव का ऐसा दृढ़ निर्णय करना चाहिये कि अन्य चाहे जितनी विपरीत बातें आयें परंतु उनसे घबरावे नहीं। कोई झूठा व्यक्ति आकर कहे कि मेरे पिता ने तुम्हारे पिता को २० वर्ष पहले एक लाख रुपये दिये थे, वे वापिस करो; वहाँ घबराकर हाँ नहीं कह देता, परंतु विवेक से निर्णय करता है। उसीप्रकार यहाँ जिसे आत्मा का हित करना हो उसे सत्य का निर्णय करना चाहिये। सत्य का निर्णय करनेवाले को कहीं घबराहट नहीं होती।

अनंतगुणरूप शक्ति से परिपूर्ण भगवान आत्मा की प्रतीति और लीनता से केवलज्ञान प्रकट होता है। अभेद आत्मा में लीन होने से साधन और साध्य का भेद टूटता जाता है। साध्य या साधन जिस भावरूप आत्मा परिणमित हो उस भाव से ही वह नित्य सेवनीय है। बीच में यदि एक क्षण भी आत्मा की मुख्यता छूटकर व्यवहार की मुख्यता हो जाए तो साधन-साध्य नहीं रहते। मोक्षमार्ग में सदैव अभेदस्वभावी आत्मा की ही मुख्यता है। एकसमय में परिपूर्ण शक्ति का पिण्ड आत्मा ही नित्य सेवन करनेयोग्य है।

साधु पुरुषों को पराश्रय के भेदरहित स्वाश्रित निर्मल दर्शन-ज्ञान-चारित्र का नित्य सेवन करना चाहिये। यद्यपि कहनेवाले का लक्ष्य पूर्ण अभेद पर है, किंतु भेद किये बिना दूसरे को नहीं समझाया जा सकता। यदि किसी अज्ञानी से कहा जाये कि अखंड आत्मा सेवन करनेयोग्य है तो वह समझता नहीं है; इसलिये उपदेशक शुद्धनय का उपदेश आवश्यक

समझते हुए भी दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेद से कथन करता है, किंतु उसका लक्ष्य तो अखंड पर ही रहता है।

पंडित बनारसीदासजी नाटक समयसार में कहते हैं —

एक देखिये जानिये, रमि रहिये इक ठौर।
समल विमल न विचारिये, यहै सिद्धि नहि और॥

आत्मा को एकरूप श्रद्धान करना और एकरूप ही जानना चाहिये तथा एक में ही विश्राम लेना चाहिये। निर्मल या समल का विकल्प नहीं करना चाहिये। इसी में सर्वसिद्धि है, दूसरा उपाय नहीं है।

यथार्थ निश्चयरूप निर्मल, एकरूप अखंड आत्मा को लक्ष्य में लेने पर उसकी स्थिरता के बल से मोक्षपर्याय प्रकट होती है। साधकदशा में अल्पकाल के लिये साधनरूप अपूर्ण अवस्था और साध्यरूप पूर्ण अवस्था के भेद का विकल्प होता है, किंतु अखंड के बल से उस भेद का विकल्प टूटता जाता है, अल्पकाल में अभेदसंबंधी विकल्प भी टूट जाते है।

देखो! उपदेशक का अभिप्राय भी कैसा होता है ? कि आत्मा जिस भाव से साध्य हो उस भाव से ही नित्य सेवनीय है। भेद अथवा राग से आत्मा की सेवा करने के अभिप्रायवाला उपदेशक सच्चा नहीं है। उपदेशक का स्वयं का अभिप्राय तो अभेद आत्मा के सेवन का ही है, परंतु दूसरों को समझाते समय व्यवहार से ऐसा प्रतिपादन करता है कि साधु पुरुषों को सदा दर्शन-ज्ञान-चारित्र सेवनीय है।

भेद को जानकर भी एक अभेद आत्मा ही सेवन करनेयोग्य है, क्योंकि परमार्थ से ज्ञान-दर्शन-चारित्र ये तीनों भेद आत्मा के ही परिणाम हैं; आत्मा से अलग नहीं हैं। अत: अभेद आत्मा के सेवन में दर्शन-ज्ञान-चारित्र का सेवन समा जाता है।

मन में दर्शन (श्रद्धान) हो, शास्त्र में ज्ञान हो, और शरीरादि की क्रिया में चारित्र हो—ऐसा नहीं होता; किंतु तीनों गुणों की एकतारूप आत्मा में स्थिर होना स्वरूपाचरण चारित्र है। एक स्थान पर शरीर का बैठे रहना या शुभविकल्प में स्थिर हो जाना भी सच्ची सामायिक नहीं है, किंतु आत्मा में परिणामों की स्थिरता सामायिक है।

अशुभ से बचने के लिये शुभभाव करने का निषेध नहीं है, किंतु उसे धर्म मानने का

निषेध है। जिसे ऊपर चढ़ने का उपदेश दे रहे हैं, उसे व्यवहार से भी नीचे गिरने को कैसे कहा जायेगा? व्यवहार से देव-पूजा, गुरु-उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान को श्रावक का कर्तव्य कहा है; क्योंकि श्रावक को उसप्रकार का शुभभाव आता है, परंतु वास्तव में तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही सेवन करनेयोग्य हैं। यहाँ तो कहते हैं कि दर्शन-ज्ञान-चारित्र सेवन करनेयोग्य हैं ऐसा कहना भी व्यवहार है—क्योंकि दर्शन-ज्ञान-चारित्र आत्मा से भिन्न नहीं हैं।

जैसे—देवदत्त नामक पुरुष के ज्ञान-श्रद्धान-चारित्र उसके स्वभाव का उल्लंघन नहीं करते; अतः वे देवदत्त ही हैं, अन्य वस्तु नहीं। उसीप्रकार आत्मा के ज्ञान, श्रद्धान और आचरण आत्मा के स्वभाव का उल्लंघन नहीं करते; अतः ये तीनों आत्मा ही हैं, अन्य नहीं। इसलिये एक आत्मा ही सेवन करनेयोग्य है, यह स्वयमेव सिद्ध होता है।

यहाँ यह निश्चय हुआ कि पूर्ण निर्मल साध्यभाव भी आत्मा स्वयं है और निर्मल दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप साधकभावरूप मोक्षमार्ग भी आत्मा स्वयं ही है। परवस्तु में व्यवहार से भी आत्मा का कोई साधन नहीं है—ऐसा निश्चय करके अपने आत्मा का ही सेवन करनेयोग्य है। वह स्वयं अपने आप से ही प्रकट परमात्मारूप में प्रकाशमान है।

आत्मा स्वयं ही परिपूर्ण स्वतंत्र प्रभु है, नित्य शरणभूत परमात्मा है। मोक्ष का मार्ग बाह्य में हो और मोक्ष आत्मा में हो अर्थात् कारण परपदार्थ में हो और कार्य आत्मा में हो—ऐसा त्रिकाल में भी नहीं होता।

यह बात कभी रुचिपूर्वक नहीं सुनी, सत्य को समझने की चिंता भी कभी नहीं की; इसलिये अपनी बात भी कठिन लगती है। समझने की रीति अनुसार सत्य समझने का प्रयत्न करना चाहिये। सत्समागम से अतीन्द्रिय आत्मा का स्वरूप समझने का प्रयत्न करे, सत्य-असत्य की भलीभाँति परीक्षा करे तो समझ में अवश्य आयेगा।

अपनी शक्ति में ही शंका करे और अपने से ही अजान रहना चाहे—तो अपूर्व रुचि के बिना समझ में नहीं आ सकता। जिसे सत्य समझने की आकांक्षा है—वह सत्य को सुनते ही भीतर से अति उत्साहित होकर बहुमान करता है कि अहो! यह अपूर्व बात तो कभी सुनी ही नहीं, मुझे यही समझना है। स्वभाव की दृढ़ता द्वारा पर के कर्तृत्व का नाश करके वह स्वयं

नि:शंक होकर घोषित करता है कि एक दो भव में ही इस संसार की समाप्ति है। इसलिये समझने की रुचि और उत्साह बारंबार बढ़ाना चहिये। यदि समझने में विलंब हो तो समझना चाहिये कि अभी अधिक रुचि की आवश्यकता है। जिसमें परमहित है—उसके श्रवण-मनन में आकुलता नहीं होना चाहिये।

ज्ञान-श्रद्धान-आचरण आत्मा ही है, आत्मा से भिन्न अन्य वस्तु नहीं है, ऐसा कहकर अनेकांत सिद्ध किया।

चैतन्यज्योति ज्ञायकस्वभावी आत्मा स्वयं अपने से ही प्रकाशमान है; वह निमित्त, व्यवहार और विकल्प से प्रकाशमान नहीं होता। ●●

नियमसार प्रवचन

कर्ता-भोक्ता

परमपूज्य दिगम्बर आचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम 'नियमसार' की १८वीं गाथा एवं उसमें समागत कलश नं० ३० पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथा इसप्रकार है—

कत्ता भोत्ता आदा पोग्गलकम्मसस होदि ववहारा।
कम्मजभावेणादा कत्ता भोत्ता दु णिच्छयदो॥१८॥

आत्मा पुद्गलकर्म का कर्ता-भोक्ता व्यवहार से है और आत्मा कर्मजनित भावों का कर्ता-भोक्ता (अशुद्ध) निश्चयनय से है।

यहाँ ज्ञान कराने के लिये नयों से वर्णन किया है।

(१) आत्मा निकटवर्ती अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से द्रव्यकर्म का कर्त्ता और उनके फलरूप सुख-दु:ख का भोक्ता है।

कर्म आत्मा के साथ एक ही क्षेत्र में हैं, इसलिये वे निकटवर्ती हैं। समीप में हैं उतना संबंध है, इसलिये अनुपचरित हैं। किंतु आत्मा के स्वभाव से वे कर्म भिन्न वस्तु हैं, अतः असद्भूत हैं। और उनके साथ निमित्त-नैमित्तिक संबंध है, इस अपेक्षा से व्यवहार है। इसप्रकार निकटवर्ती अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से आत्मा को द्रव्यकर्म का कर्त्ता कहा है। जब आत्मा राग-द्वेष करता है, तब उनका निमित्त पाकर कर्म बँधते हैं। अतः आत्मा ने उन कर्मों को किया ऐसा निकटवर्ती अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से कहा है। वास्तव में कहीं आत्मा उनका कर्त्ता नहीं है। कर्म की अवस्था हुई तब उसमें निमित्तरूप से जीव का विकार था, इतना निमित्त-नैमित्तिक बतलाने के लिये यह व्यवहार कहा है। कर्म बँधता है तो उस समय जीव में भी उतना विकार है—ऐसा यहाँ ज्ञान कराया है।

साधकजीव को बीच में राग भी है, इसलिये उसको ऐसा नय लागू पड़ता है। यदि राग सर्वथा टल गया हो तो उसको यह नय लागू नहीं पड़ सकता। अपने राग का और कर्म का निमित्त-नैमित्तिक संबंध है, सम्यग्दृष्टि उसका ज्ञान करता है, इसलिये उसको ऐसा नय होता है।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने स्वयं मूलसूत्र में आत्मा को पुद्गलकर्म का व्यवहार से कर्त्ता कहा है, क्योंकि आत्मा की पर्याय में कर्म के साथ उतना निमित्त-नैमित्तिक संबंध है। अतः कहा है कि आत्मा निकटवर्ती अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से कर्म का कर्त्ता है और उसके फलरूप सुख-दुःख का भोक्ता है। यहाँ सुख-दुःखरूप अंदर के परिणाम की बात नहीं है, अपितु जड़कर्म के विपाक की बात है। स्वयं हर्ष-शोक के परिणाम करे, उनका भोगना तो अशुद्धनिश्चयनय से है; और उसमें जो जड़कर्म का उदय निमित्त है, उसका भोग कहना वह निकटवर्तीअनुपचरितव्यवहारनय से है।

बाहर के संयोग का कर्त्ता-भोक्ता कहने की बात इस निकटवर्ती में नहीं लेना है, क्योंकि उसकी बात तो उपचरितअसद्भूतव्यवहार में आवेगी। यहाँ तो निकटवर्ती अर्थात् एक ही क्षेत्र में रहनेवाले कर्म का कर्त्ता-भोक्ता आत्मा असद्भूतअनुपचरितव्यवहार से है। कर्म ने आत्मा को फल दिय यह कथन व्यवहार का है। दूर की सामग्री इस नय में नहीं लेना।

(२) अशुद्ध निश्चयनय से समस्त मोह-राग-द्वेषादि भावकर्म का कर्त्ता एवं भोक्ता है।

अपनी पर्याय में जो राग-द्वेष, हर्ष-शोक आदि विकारी भाव होते हैं, वे अपनी ही

पर्याय हैं इसलिये निश्चय; और वे भाव विकारी हैं इसलिये अशुद्ध; अत: अशुद्धनिश्चयनय से आत्मा अपने विकारीपरिणाम का कर्त्ता और हर्ष-शोक का भोक्ता है। दृष्टि के विषय में तो आत्मा रागादि का कर्त्ता-भोक्ता है ही नहीं—ऐसा कहते हैं। किंतु यहाँ तो अपनी अशुद्ध पर्याय का ज्ञान कराया है। अशुद्धता अपनी पर्याय में जीव स्वयं करता है, कोई दूसरा उसे वह अशुद्धता करवाता नहीं है, अत: निश्चय से जीव उसका कर्त्ता-भोक्ता है; परंतु वह रागादिभाव अशुद्ध हैं इसलिये उनको अशुद्धनिश्चयनय कहा। रागादिभाव विकारी है इसलिये तो अशुद्ध और अपने ही हैं इसलिये निश्चय; इसप्रकार अशुद्धनिश्चयनय से आत्मा अपने रागादि विकारी परिणामों का कर्त्ता-भोक्ता है।

(३) अनुपचरितअसद्भूतव्यवहार से (देहादि) नामकर्म का कर्त्ता है।

कर्म का कर्त्ता-भोक्ता कहा उसमें 'निकटवर्ती' शब्द प्रयोग किया था। यहाँ उस शब्द को नहीं लिया। देहादि की क्रिया तो उसके ही कारण से स्वतंत्ररूपेण होती है, आत्मा उसका कर्त्ता वास्तव में नहीं है, किंतु निमित्तरूप में इच्छा और शरीर चले तो वहाँ अनुपचरित-असद्भूतव्यवहार से जीव को शरीर का कर्त्ता कहा। आत्मा की इच्छा के कारण कहीं शरीर चलता नहीं है। आत्मा में शरीरादि असद्भूत हैं। किंतु शरीर की क्रिया के समय जीव के निमित्तपने का ज्ञान कराने मात्र के लिये यह व्यवहार है। व्यवहार से आत्मा कर्त्ता है अर्थात् निश्चय से तो शरीरादि की क्रिया उसके अपने काल में होती है, निश्चय से तो वह स्वयं ही (शरीर ही) कर्त्ता है; आत्मा को कर्त्ता कहना तो व्यवहार है निश्चय से तो वह स्वयं ही कर्त्ता है, तब दूसरे को कर्त्ता कहने का व्यवहार हुआ।

वह बात सभी बोलों में लागू होती है।

(१) पहले कर्म का कर्त्ता-भोक्ता व्यवहार से कहा—उसमें निश्चय से कर्त्ता हो तो जड़-कर्म स्वयं ही है और व्यवहार से जीव को कर्त्ता कहा है।

उसीप्रकार कर्म का फल निश्चय से तो कर्म में ही आता है, आत्मा उसका भोक्ता नहीं, किंतु व्यवहार से आत्मा उसका भोक्ता कहा जाता है।

निश्चय को रख करके ही व्यवहार होता है न? निश्चय से तो कर्म का कर्त्ता और भोक्ता वह कर्म स्वयं ही है—वह उसके परिणाम का स्वकाल ही है, और उस समय निमित्तरूप से

जीव को कर्त्ता-भोक्ता कहना, वह व्यवहार है। निश्चय को लक्ष्य में रखकर ही यह व्यवहार कहने में आता है।

(२) अशुद्धनिश्चयनय से आत्मा को रागादि का कर्त्ता-भोक्ता कहा, उसमें व्यवहार से आत्मा को कर्म का कर्त्ता-भोक्ता कहा—इस भाँति दोनों बोलों में परस्पर निश्चय-व्यवहार हो गया।

निश्चय से पुद्गल स्वयं अपना कर्त्ता-भोक्ता और व्यवहार से जीव उसका कर्त्ता-भोक्ता है। निश्चय से जीव स्वयं अपने राग-द्वेष का कर्त्ता-भोक्ता है, तब व्यवहार से कर्म को कर्त्ता-भोक्ता कहा जाता है।

(३) देह, वाणी आदि का कर्त्ता-भोक्ता आत्मा को कहना वह अनुपचरितअसद्भूत-व्यवहार है। तो निश्चय क्या है ? देह, वाणी आदि की क्रिया उसके अपने कारण से स्वयं होती है, वह निश्चय है; तब रागी जीव उसमें निमित्त है—इसलिये उसको देहादि नोकर्म का कर्ता व्यवहार से कहते हैं। यह नये साधक के होती हैं।

(४) उपचरितअसद्भूतव्यवहार से घट-पट-शकटादि का (घड़ा, वस्त्र, गाड़ी आदि का) कर्त्ता है। क्षेत्र से दूरस्थ पदार्थ हैं, इसलिये उपचरितव्यवहार कहा है। घड़ा, मकान, वस्त्रादि तो उनके अपने स्वतंत्र परिणमन से होते हैं, परंतु उस समय रागीजीव निमित्तरूप से है—इसका ज्ञान कराने के लिये उस जीव को उपचार से असद्भूतव्यवहारनय से उनका कर्त्ता कहा जाता है।

स्वभाव की दृष्टि से देखा जाये तो आत्मा घट-पटादि का निमित्तकर्त्ता भी नहीं है—यह बात समयसार की १००वीं गाथा में स्पष्ट कही है। यहाँ वह बात नहीं है। यहाँ तो पर्याय की बात है। समयसार में तो अभेद द्रव्यदृष्टि की बात है। यदि द्रव्य स्वयं ही निमित्त हो तब तो जहाँ-जहाँ घड़ा वगैरह हो वहाँ-वहाँ वह निमित्त होता ही रहे—अर्थात् उसकी मुक्ति तो कभी होवे ही नहीं। यहाँ तो पर्याय में क्षणमात्र का राग है। उसका ज्ञान कराने के लिये उपचार से पर का कर्त्ता कहा गया है। पर की क्रिया होती है। और उसीसमय रागीजीव निमित्तरूप से था, उसे पहचानने के लिये उसे उपचार से घट-पटादि का कर्त्ता व्यवहार से कहा है।

यह अशुद्धजीव का वर्णन है अर्थात् जिसको अभी रागादि विकल्प होते हैं। ऐसे जीव

को यह नय लागू पड़ते हैं। सिद्धों को यह नय लागू नहीं पड़ते। इस गाथा में कुल चार नय कहे हैं :—

(१) निकटवर्तीअनुपचरितव्यवहार से आत्मा कर्म का कर्त्ता और उनके फल का भोक्ता है। किंतु निश्चय से तो कर्म का कर्त्ता-भोक्ता कर्म स्वयं ही है।

(२) अशुद्धनिश्चय से आत्मा अपने विकारी भाव का कर्त्ता और भोक्ता है।

(३) अनुपचरितअसद्भूतव्यवहार सशरीरादि का कर्त्ता है। वहाँ शरीरादि की क्रिया निश्चय से तो उनके कारण से ही होती है, निमित्तरूप से रागी जीव होता है, उसे व्यवहार से कर्त्ता कहा जाता है।

(४) मकान-वस्त्रादि का कर्त्ता जीव को कहना उपचरितअसद्भूतव्यवहार है। निश्चय से मकान-वस्त्रादिरूप पुद्गलस्कंध ही स्वयं परिणमन करते हैं। शिल्पी ने मकान बनाया—ऐसा कहना तो उपचार है, यथार्थ नहीं।

त्रिकालीस्वभाव की दृष्टि में तो आत्मा किसी को निमित्त भी नहीं है। इसप्रकार त्रिकाली दृष्टि में तो वह निमित्तकर्त्तापना भी उड़ा दिया है। यहाँ तो मात्र वर्तमान पर्याय का ज्ञान कराने की बात है। सम्यग्दृष्टि जीव स्वभावदृष्टि में कहीं पर का निमित्तरूप से भी कर्त्ता नहीं है। पर्याय में अशुद्धता होने से वर्तमानमात्र का पर के साथ निमित्तसंबंध है, उसका ज्ञान कराने भर के लिये यह व्यवहारनय है। इसप्रकार अशुद्धजीव की बात की।

सुख-दुःख के तीन प्रकार आते हैं :—

(१) सुख-दुःखरूप जीव के परिणाम—यह अशुद्धनिश्चय में आते हैं।

(२) सुख-दुःखरूप कर्म का उदय—यह निकटवर्ती अनुपचरितअसद्भूतव्यवहार में आता है।

(३) सुख-दुःखरूप बाह्यसामग्री—यह उपचरितअसद्भूतव्यवहार में आती है।

इस तरह तीन प्रकार से सुख-दुःख का वर्णन किया गया।

अब इस गाथा पर कलशरूप काव्य कहते हैं —

अपि च सकलरागद्वेषमोहात्मको यः
परमगुरुपदाब्जद्वन्द्वसेवाप्रसादात्।

सहजसमयसारं निर्विकल्पं हि बुद्धवा।
स भवति परमश्रीकामिनीकान्तकान्तः ॥३०॥

सकलमोह-राग-द्वेषवाला जो कोई पुरुष, परमगुरु के चरणकमल की सेवा के प्रसाद से निर्विकल्प सहज समयसार को जानता है, वह पुरुष परमश्रीरूपी सुंदरी का प्रिय कांत होता है।

अठारहवीं गाथा में ऐसा कहा था कि आत्मा अपने रागादि परिणाम का अशुद्ध निश्चय से कर्त्ता है; कर्म उसे स्वभाव में विकार कराते नहीं। पर के कारण मुझे विकार होता है, ऐसा माने वह तो तीव्र मोह है। कर्म के उदय प्रमाण मुझे विकार करना पड़ता है, यह मान्यता भी तीव्र मोह है।

देहादि के कर्त्तापन की बात व्यवहार से की थी, वह सब यहाँ निकाल दी। यहाँ तो आत्मा के अपने परिणमन में जो राग-द्वेष-मोह हैं, उसी की बात रखी है; और जो राग-द्वेष-मोह का स्वयं कर्त्ता है, वह किसप्रकार टले-यह बात यहाँ बतलाते हैं।

चैतन्य को चूककर किसी भी पराश्रय भाव से लाभ माना—वह राग-द्वेष-मोह है। जिसको निश्चय शुद्धचैतन्यस्वभाव का भान नहीं और अनादि से राग-द्वेष-मोह में ही अटका हुआ है, ऐसा पुरुष भी परमगुरु के चरण-कमल की सेवा के प्रसाद से शुद्ध आत्मा को जानता है।

प्रथम तो सच्चे गुरु की देशना मिलनी चाहिये। पश्चात् उस परमगुरु ने जैसा कहा वैसा ही स्वयं श्रद्धान-ज्ञान करना ही श्रीगुरु के चरण की सेवा है। श्रीगुरु ने क्या कहा? चैतन्य भगवान पुण्य-पापरहित निर्विकल्प है—ऐसा श्रीगुरु ने कहा और शिष्य ने जाना।

अनादि से पर्याय में राग-द्वेष-मोह हैं वह तो पहले ही बतलाया और उसका कर्त्ता अशुद्धनिश्चय से कहा—वह कैसे निवारण किया जा सके उसकी यह बात है।

अनादि से निर्विकल्प सहज समयसार को जाना नहीं था और सविकल्प ऐसे व्यवहार से—रागादि से आत्मा का लाभ मानता था इसलिये यह जीव रागी-द्वेषी-मोही था—उसका ज्ञान कराया; अब श्रीगुरु के उपदेश से शुद्धात्मा को जानने पर वह राग-द्वेष-मोह टल जाता है-अर्थात् श्रीगुरु ने भी ऐसा ही उपदेश दिया कि तेरा आत्मा व्यवहार के विकल्प से रहित है, वह तो निर्विकल्प सहज समयसार है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान कर, तो तेरा कल्याण होगा। ऐसा जिसने समझा उसके ऊपर श्रीगुरु की कृपा हुई।

कर्म के कारण विकार होता है अथवा उदय प्रमाण विकार करना पड़ता है—ऐसा माना जाये तब तो कोई प्रयत्न ही करने को नहीं रह जाता; क्योंकि उसका पुरुषार्थ तो उदय में जुड़ गया है अर्थात् अशुभ पलटकर गुरु की वाणी के श्रवण का शुभभाव करने का अवकाश भी कहाँ से होगा। वह तो तीव्र मिथ्यात्व में पड़ा हुआ है।

यहाँ तो श्रीगुरु मिले उनके पास से क्या सुना? चिदानंद निर्विकल्प आत्मा की बात सुनी। सुनते समय तो शुभविकल्प था, किंतु समझानेवाले ने ऐसा समझाया कि यह विकल्प तेरा स्वरूप नहीं है, अतः तू सहजरूप का आश्रय कर। ऐसा जानकर जिसने निर्विकल्प सहज समयसार का आश्रय किया उसने श्रीगुरु के चरण की सेवा के प्रसाद से शुद्ध आत्मा को जाना। गुरु कैसा हो और उसकी वाणी सुननेवाला कैसा हो—यह बात इसमें बतलाई। बीच में विकल्प का आश्रय करना बतलावे, अथवा राग से लाभ मनवाये, तो वह गुरु नहीं है, और उसकी वाणी भी यथार्थ नहीं है। इसप्रकार कुगुरु को छोड़कर सच्चे गुरु के पास सुनने आया है—ऐसे शिष्य से श्रीगुरु ने क्या कहा?

श्रीगुरु ने ऐसा कहा कि तेरा आत्मा निर्विकल्प सहजशुद्धतत्त्व है, तेरे तत्त्व को मुझसे या विकल्प से लाभ नहीं है। जैसा शिष्य समझा वैसा ही श्रीगुरु ने कहा। जैसे कोई कहे कि 'मैं शक्कर लाया' तो इसमें यह बात भी आ गयी कि 'व्यापारी ने शक्कर प्रदान की।' उसीप्रकार श्रीगुरु की सेवा के प्रसाद से शिष्य ने निर्विकल्प सहज शुद्ध आत्मा को समझा—इसमें यह भी आ गया कि श्रीगुरु ने भी उसे वही बात समझाई है। तेर स्वरूप निर्विकल्प सहज समयसार है—उसमें किसी विकल्प से, व्यवहार से, राग से लाभ होता नहीं। ऐसे शुद्धात्मा की बात सुनने के लिये जो श्रीगुरु के पास आया है, उसका राग मंद हुआ है, कुदेव की मान्यता छूटकर मिथ्यात्व भी मंद हो गया है।

श्रीगुरु कहते हैं कि यह जो शुभराग है, उस राग से भी लाभ नहीं है—ऐसा हम तुझे बतलाते हैं। तेरे आत्मा को तेरे सहजशुद्धतत्त्व के आश्रय से ही लाभ होगा। जिसने राग से, व्यवहार से आत्मा को लाभ माना अथवा मनवाया, उसने तो आत्मा को रागवाला ही स्वीकार किया और करवाया, अतः वह तो कुगुरु है। ऐसे कुगुरु की सेवा जिसने त्याग दी है और सच्चे गुरु के पास सुनने आया है, उसे सद्गुरु कहते हैं कि तेरा आत्मा निर्विकल्प चिदानंदस्वरूप है, कुगुरुओं ने तुझे अपने को रागवाला भिखारी मनवाया है, वह यथार्थ नहीं है। हम तो कहते हैं

कि तू भिखारी नहीं अपितु चक्रवर्ती है, तेरा स्वरूप सहज शुद्ध चिदानंद है।

इसप्रकार श्रीगुरु के पास से अपना स्वभाव सुनकर, उसका स्वीकार करके जो स्वभाव-सन्मुख झुका, उसने निर्विकल्प समयसार को जान लिया—ऐसा श्रीगुरु की सेवा का प्रसाद है। जब स्वयं शुद्ध स्वभाव को जाना तब श्रीगुरु भी वैसा ही बतलानेयोग्य हैं।

अफीम की दुकान छोड़कर मिष्ठान्न की दुकान पर गया तो समझ लेना चाहिये कि उस मनुष्य को मिठाई खरीदना है। उसीप्रकार जो जीव राग से लाभ मनवानेवाले कुगुरु को छोड़कर शुद्ध आत्मा बतलानेवाले श्रीगुरु की वाणी सुनने आया है, वह जीव शुद्धात्मा को ही समझने आया है। अर्थात् इसमें यह बात भी आ जाती है कि उस जीव को देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा है।

श्री गुरु के चरणों की सेवा के प्रसाद से क्या मिला? हे जीव! तू अपने चिदानंद तत्त्व का ही अवलंबन ले—उसी से तुझे लाभ है। सुनने का भाव तो व्यवहार है; किंतु उससे लाभ होता है यह बात छोड़ दे, और अपने निर्विकल्प चिदानंदस्वभाव से ही लाभ है ऐसा समझकर अनुभव कर। ऐसा जब जाने तब कहा जाये कि उसने श्रीगुरु का उपदेश सुना है।

सर्वज्ञ की आज्ञा ऐसी ही होती है, श्रीगुरु भी ऐसा ही प्रतिपादन करते हैं, उनकी वाणी भी ऐसी ही होती है; ऐसे निर्विकल्प शुद्धात्मा को माननेवाले ने ही देव-शास्त्र-गुरु को माना है। निर्विकल्प आत्मा की बात सुनने को खड़ा है; वहाँ जो सुनने का राग है, उसकी रुचि को छोड़ और शुद्धात्मा की रुचि कर, तभी तू अपने आत्मा को जान सकेगा। जैसा शिष्य ने जाना है वैसा ही श्रीगुरु ने कहा है। श्रीगुरु ने शुद्धात्मा बतलाया और वैसा ही शिष्य ने भी जाना। ऐसा जाननेवाला पुरुष परमश्रीरूपी मुक्ति को प्राप्त करता है। आत्मा की मुक्तिरूप पर्याय परम सुंदर है—ऐसी परमसुंदरी का स्वामी वह जीव होता है। सादि-अनंत एक समय का भी विरह न रहे ऐसी मुक्तिपरिणति को वह जीव प्राप्त कर लेता है।

अज्ञानी जीव को सत्य सुनानेवाले श्रीगुरु क्या कहते हैं? शिष्य क्या समझता है? यह बात यहाँ बतला दी। स्वभावाश्रय से केवलज्ञान होता है, यह समझा दिया।

निर्विकल्प शुद्धात्मा को जानने में निमित्तरूप से इसप्रकार कथन करनेवाला गुरु ही स्वीकार किया गया है और उसकी सेवा के प्रसाद से जो जीव शुद्धात्मा को जानता है, वही मुक्ति प्राप्त करता है। ●●

द्रव्यसंग्रह प्रवचन

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

अब विनाशशील भाव कहते हैं। कर्म के निमित्त से उत्पन्न दश प्रकार के प्राणस्वरूप जीवत्व—जिसमें ज्ञान की खंड-खंड दशा, वीर्य की खंड-खंड दशा होती है, ऐसा जीवत्व; तथा भव्यत्व और अभव्यत्व—ये तीन प्रकार के भाव विनाशशील हैं, पर्याय के आश्रित हैं। इससे उनको पर्यायार्थिक संज्ञा अशुद्धपारिणामिकभाव से कहते हैं। सार यह है कि अशुद्ध पारिणामिकभाव आदर करनेयोग्य नहीं है; किंतु एकरूप शुद्धपारिणामिकभाव आदर करनेयोग्य है, क्योंकि शुद्धद्रव्य के आश्रय से ही मुक्ति होती है।

जिस शास्त्र में दया-दान के भाव से जीव मुक्ति प्राप्त करता है—ऐसा कथन है, और हाथी ने पैर ऊँचा रखकर खरगोश पर दया की इससे उसने संसार पार कर लिया (मोक्ष हो गया)—ऐसा कहते हैं; यह तो स्थूल भूल है, क्योंकि बिना सम्यक्त्व के संसार पार नहीं होता है। राग के आश्रय से तो मुक्ति नहीं है, किंतु अशुद्धपारिणामिकभाव से जो भेद बताये हैं, उनके आश्रय से भी मुक्ति नहीं है।

यहाँ अशुद्धपारिणामिकभाव के तीन भेद करके बतलाते हैं —

(१) दश प्राणरूप अशुद्धजीव के भाव आश्रय करनेयोग्य नहीं हैं।

(२) भव्य और अभव्य ऐसे भेद में अभव्य का तो प्रश्न नहीं है; लेकिन मैं भव्य हूँ, ऐसे विकल्प को भी स्थान नहीं है, ऐसा विकल्प शरणभूत नहीं है।

(३) जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व ऐसे तीन भेद आश्रय करनेयोग्य नहीं हैं; तीन भेद शरणरूप नहीं हैं। 'मैं भव्य हूँ', ऐसे विकल्प को भी स्थान नहीं है। परमपारिणामिकभाव से एकरूप शुद्ध हूँ—ऐसे स्वभाव के आश्रय का विश्वास आया। यहाँ मैं भव्य हूँ ऐसे प्रश्न को स्थान ही नहीं है।

देव-गुरु-शास्त्र की कृपा से संसार नष्ट होगा; दान देने से, शुभराग से, दया के भाव से,

आहारदान से, भक्ति से संसार नष्ट होगा—ऐसा जो मानते हैं; और पर्याय से धर्म होता है—ऐसा जो मानते हैं; वे जीव वस्तुस्वरूप को नहीं समझते हैं। जिसमें संसार नहीं ऐसे द्रव्यस्वभाव के अवलंबन से 'संसार नहीं' रूप परिणाम हों—किंतु एक समय की क्षयोपशम की पर्याय के अवलंबन से अथवा दानादि के अवलंबन से भव का नाश नहीं होता। जो जीव दया-दानादि से मुक्ति मानते हैं, वे बहिरात्मा के अवलंबन से परमात्मा होंगे—ऐसा मानते हैं।

त्रिकालीस्वभाव की अपेक्षा से दश प्राणादिरूप जीवत्व, भव्यत्व अथवा अभव्यत्व ऐसे भेद नहीं होते, लेकिन पर्याय-अपेक्षा से भेद होते हैं। पंच भावइंद्रियाँ, तीन बल, प्राण वगैरह भावप्राणरूप खंड-खंड दशा विनाशीक है, पर्याय में है एकरूप नहीं रहती। भव्यत्व और अभव्यत्व की योग्यता पर्याय में है, वह नई-नई उत्पन्न होती है, और व्यय होती है, पर्यायापेक्षा से विनाशशील मानी गयी है। इसीलिये पर्यायाश्रित गुणभेद में गिनकर (मानकर) उसको अशुद्धपारिणामिकभाव कहा है।

समयसार बंध-अधिकार में कहा है कि अभव्य जीव अभव्य है, इसलिये उसको सम्यग्दर्शन नहीं होता—ऐसा नहीं है। किंतु वर्तमान पर्याय में 'मैं ज्ञानस्वरूपी आत्मा हूँ'—ऐसी श्रद्धा नहीं करता है; प्रत्येक समय ऐसी भूल करता आया है; इसलिये मोक्ष प्राप्त नहीं करता।

सर्वज्ञभगवान की दिव्यध्वनि में से जो वाणी निकली और उसमें से जो शास्त्र रचे गये, वह एक धारा की बात है। गुरु-परम्परा अनुसार शास्त्र की रचना हुई है। यहाँ संधि की है, किंतु परम्परा भंग नहीं हुई है—ऐसा बतलाते हैं। पारिणामिकभाव की चर्चा अन्यत्र कहीं नहीं है। जीव को वस्तु का स्वरूप समझना चाहिये। समझने के बाद सरल है, लेकिन जहाँ तक मार्ग की रीति अथवा पद्धति जानने में न आये वहाँ तक वीर्य नहीं उछलता है। एकरूप शुद्धचैतन्यरूप जीवत्व अविनाशी कहा है और वह शुद्धद्रव्य के आश्रय से है, इससे वह पारिणामिकभाव है और शुद्धनिश्चय का विषय है, उसके आश्रय से धर्म होता है।

पाँच भावइंद्रियोंरूप खंड-खंडज्ञान, तीन बलरूप खंड-खंड प्राण वगैरह-इस दश प्राणरूप जीव की योग्यता पर्यायाश्रित है, और भव्यत्व और अभव्यत्व पर्याय में प्रतिसमय नवीन पर्याय करता है, इससे वह पर्याय में जाता है। ये तीन अशुद्धपारिणामिकभाव संसारी जीव में अशुद्धनय से हैं, अध्यात्म में उक्त तीन भाव व्यवहार हैं, अभूतार्थ हैं। त्रिकाल एकरूप स्वभाव की अपेक्षा से खंड-खंड प्राणरूप जीवत्वपना और भव्यत्व, अभव्यत्वपना ऐसे भेद

शुद्धस्वभाव में नहीं हैं। लेकिन संसारी जीवों में ये तीन भेद होते हैं। ये तीन भेद अशुद्धपारिणामिकभाव से व्यवहार से संसारी जीवों में हैं। तब भी शुद्धनिश्चयनय की अपेक्षा से स्वभाव में ऐसे भेद नहीं हैं और मुक्त जीवों में तो ऐसी अशुद्धता नहीं है। मुक्त जीवों में खंड-खंड जीवत्वपना अथवा भव्यत्व, अभव्यत्व ऐसे भेद नहीं हैं।

संसारी जीव में पर्यायदृष्टि से ऐसे भेद किये हैं, इस कारण से उनको अशुद्ध कहा है।

इसप्रकार शुद्ध और अशुद्ध पारिणामिकभाव कहे। उनमें शुद्धपारिणामिकभाव ध्यान करनेयोग्य है और अशुद्ध ध्यान करनेयोग्य नहीं है।

अब इस शुद्ध और अशुद्ध ऐसे दो भाव में कौनसा भाव ध्यान करने जैसा है? यह बात समझना है। सर्वज्ञ भगवान वगैरह पर-पदार्थ के ध्यान की बात तो नहीं है, क्योंकि पर की ओर का ध्यान राग का कारण है; और दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति भी शुभभाव है, विकार है, वह संसार के खाते में (संसारवर्धक) जाता है, इसलिये वह ध्यान करनेयोग्य नहीं है। लेकिन अशुद्धपारिणामिकभाव भी आश्रय करनेयोग्य नहीं है। देव-गुरु-शास्त्र के प्रति तो राग करना जैसा नहीं है, किंतु भव्य-अभव्य वगैरह के भेदकर मार्गणा के भेदकर आश्रय करनेयोग्य नहीं है। अहो! सम्यग्दर्शन के लिये एक परमपारिणामिकध्रुवस्वभाव आदर करनेयोग्य है। निमित्त नहीं, कर्म नहीं, हीनपर्याय नहीं, भव्य-अभव्य का विकल्प नहीं; एकरूप चैतन्य ध्रुवस्वभाव ध्येयरूप है, ध्यान करनेयोग्य है।

वह शुद्धपारिणामिकभाव ध्यान करनेयोग्य है, किंतु स्वयं ध्यानरूप नहीं होता; कारण कि ध्यान, वह शुद्ध आत्मा के आश्रय से उत्पन्न होती सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वीतरागी पर्याय है, और ध्यान तो एकरूप आत्मद्रव्य है। द्रव्य पर्यायरूप नहीं होता, एक समय की पर्याय में संपूर्ण त्रिकालीद्रव्य का समावेश नहीं होता। इसलिये शुद्धपारिणामिकभाव ध्यानरूप नहीं होता है—इसप्रकार कहा। कारण कि ध्यानपर्याय अविनाशशील है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वीतरागी पर्याय का नाश होकर केवलज्ञानादि पर्याय प्रगट होती है, अतएव विनाशशील है, और ध्येयरूप तो शुद्धपारिणामिकभाव अविनाशी है, कारण कि वह द्रव्य है।

अनंत काल से वस्तु क्या है? जीव को इसका पता नहीं है। तू केवलज्ञान प्रगट करना चाहता है, वह वर्तमान पर्याय में प्रगट नहीं है। तब वह कहाँ से प्राप्त करेगा? निमित्त से अथवा पुण्य से प्राप्त करेगा। पर्याय में से पर्याय आयेगी, केवलज्ञान का ध्येय अर्थात् लक्ष्य क्या है? तेरा

हेतु क्या ? मोक्षमार्ग का ध्येय तो ज्ञायकस्वरूप है। रागादि परिणाम अथवा अशुद्ध पारिणामिक भावों के भेद आश्रय लेने जैसे तो नहीं हैं, किंतु ध्यानपर्याय-ध्येयरूप नहीं है। क्योंकि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय विनाशशील है, इससे वह ध्येय नहीं है। किंतु चैतन्य चिदानंद अनंतशक्ति का पिंड आत्मा ध्येयरूप है।

वह ध्येय स्वयं ध्यानरूप नहीं होता है। जैसे किसी वस्तु को आँखों से एकाग्र होकर देखें और घड़ी में कितने बजे हैं, उसका विचार करता है। उस समय पर्याय का लक्ष्य काँटे पर जाता है, और उस समय अन्य कोई विचार व्यापार, धन्धा आदि के छोड़ देता है और फिर काँटे वगैरह सामने के पदार्थ स्वयं ही पर्याय में नहीं आ जाते हैं। फिर भी पर्याय का ध्येय तो काँटा है, पर्याय में वह वस्तु आती है ? पर्याय का ध्येय मिट (नष्ट) जाता है। उससमय दूसरे विचार का लक्ष्य रहता है ? पर्याय में काँटा नहीं आता, फिर भी पर्याय का ध्येय काँटा है, उस समय अन्य विचार नहीं होते। इसीप्रकार सम्यग्दर्शन की पर्याय का ध्येय शुद्ध आत्मद्रव्य है। फिर भी द्रव्य, पर्याय में संपूर्णतया आ नहीं जाता। धर्मी कर्त्ता है, उसकी पर्याय ध्यान और उसका ध्येय शुद्धद्रव्य है, और उस समय भव्य-अभव्य के विकल्प अथवा दूसरे कोई भी विकल्प नहीं होते—क्योंकि वे नाशवान होने से आश्रय लेने योग्य नहीं हैं।

राग-द्वेषपना और भव्य-अभव्यपना भी दूर कर दिया और शुद्धपर्याय भी विनाशशील है, इसलिये वह ध्यान करनेयोग्य नहीं हैं। परपदार्थ बदलते (परिणमनशील) हैं, इसलिये ध्यान करनेयोग्य नहीं हैं। राग-द्वेष बदलते हैं, व्यवहाररत्नत्रय के परिणाम बदलते हैं, इसलिये ध्यान करनेयोग्य नहीं हैं। प्राणरूप जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व—भेद हैं; पर्यायाश्रित हैं; इसलिये ध्यान करनेयोग्य नहीं हैं। ध्यान-पर्याय की शुद्धता बढ़ती जाती है, इससे वह बदलती है, अतएव ध्यान करनेयोग्य नहीं है। त्रिकाली एकरूप शुद्ध आत्मा अविनाशी है, बदलता नहीं, इसलिये उस पर एक दृष्टि रखनायोग्य है, और ध्यान करनेयोग्य है।

कोई ऐसा कहे कि यह बात कठिन लगती है, किंतु मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है कि कठिन वस्तु में विशेष उपयोग लगता है। द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप कठिन लगता है तो उसमें उपयोग लगाकर विचार करते-करते ज्ञानपर्याय निर्मल होती जाती है। जीव सामायिक करके धर्म चाहता है, तब सामायिक करनेवाला कौन है ? उसकी जानकारी बिना धर्म कैसा ?

तू ध्यान रखेगा तो शांति प्रकट होने का उपाय हाथ लगेगा। तू शांति चाहता है तो वर्तमान पर्याय में शांति नहीं है, तब लायेगा कहाँ से ? बाहर से लायेगा ? अन्दर में एकरूप वस्तु है, उसको ध्येय नहीं बनायेगा, तब तक शांति नहीं होगी।

ध्यान भी शुद्धपर्याय है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वीतरागी दशा है; वह विनाशशील है, वह नष्ट होकर सिद्धदशा प्रकट होती है। इसलिये ध्यानपर्याय विनाशशील है, और ध्येयरूप वस्तु शुद्धद्रव्य है। ध्यान और ध्येय एक हो तो ध्यान का नाश होने से ध्येय का अर्थात् द्रव्य का नाश हो जाये। लेकिन ऐसा होता नहीं है। पर्याय बदलने पर भी द्रव्य एकरूप रहता है, नाश नहीं होता।

समयसार में भी कहा है कि धर्मी और ध्यान (धर्मदशा) को एक कहें तो ध्यानपर्याय नाश होने से धर्मी नष्ट होता है। किंतु इसप्रकार नहीं है, ध्यानपर्याय नष्ट होकर केवलज्ञान होता है और आत्मा ध्रुव रहता है। आत्मवस्तु अविनाशी है, और ध्यान विनाशशील है। ध्यान में संपूर्ण (समूचा) द्रव्य का समावेश नहीं होता। अर्थात् ध्यान का विषय द्रव्य तो होता है, लेकिन ध्यान एकसमय मात्र है, इससे संपूर्ण द्रव्य का अनुभव उसमें (ध्यान में) नहीं होता।

इसप्रकार वीतरागदेव द्वारा कहे हुये सात तत्त्व, नौ पदार्थ जानना चाहिये। सत्य ज्ञान करना यह सुख का उपाय है, और ज्ञान से काम नहीं लेना यह दु:ख का उपाय है। यहाँ भव्य-अभव्य दो प्रकार के भाव अशुद्धपारिणामिकभाव हैं और वे नाशवान हैं, और ध्यानपर्याय भी नाशवान है; इसलिये वे ध्यान करनेयोग्य नहीं हैं। शुद्धपारिणामिकभाव से एकरूप द्रव्य अविनाशी है, इसलिये वह एक ही ध्यान करनेयोग्य है और वह सुख का उपाय है।

(१२) सम्यक्त्वमार्गणा :- औपशमिक, क्षायोपशमिक तथा क्षायिक सम्यक्त्व ऐसी तीन प्रकार से सम्यक्त्वमार्गणा है। आत्मा द्रव्य पदार्थ है, उसके पर्याय में वास्तविक अथवा अवास्तविक श्रद्धा के पहलू (नय या दृष्टि) हैं। वह जीव की अवस्था है, लेकिन ये भेद शुद्धस्वभाव में नहीं हैं।

उपशमसम्यक्त्व :- अनादि मिथ्यादृष्टि जीव को सत्यार्थ देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करने के बाद आत्मा संबंधी स्वाभाविक विचार करने के बाद आत्मा की प्रतीति अथवा पहिचान होती है, वह उपशमसम्यक्त्व है।

अनादि मिथ्यादृष्टि को प्रथम उपशमसम्यक्त्व होता है। किसी को भी पहले क्षयोपशम अथवा क्षायिकसम्यक्त्व नहीं होता। उपशम होने के बाद ही क्षयोपशम होता है, पश्चात् ही क्षायिकसम्यक्त्व होता है।

इस उपशमसम्यक्त्व का काल अंतर्मुहूर्त का है। देव, मनुष्य, नरक, तिर्यंच ऐसी चार गति में उपशमसम्यक्त्व हो सकता है। सातवें नरक की ३३ सागर की स्थितिवाला जीव है। वहाँ की अपार, अमर्यादित ठंड में भी उस जीव ने पूर्व में सत्य बात सुनी हो और उसको स्मरण में लावे, तब विचारता है कि मैं शुद्ध चैतन्यस्वरूप हूँ, ऐसा पुरुषार्थ करे तो उपशमसम्यक्त्व प्राप्त करता है। जैसे पानी में नीचे कचरा बैठ जाता है और ऊपर से पानी निर्मल (साफ) दिखता है; वैसे ही सत्ता में कर्म स्थित हैं और उपशांत किये होने से स्वयं निर्मल आत्मा का अनुभव करता है, वह उपशमसम्यक्त्व है। वह पर्याय है, उसका विषय अखंड द्रव्य है। किंतु उपशमसम्यक्त्व पर्याय होने से, द्रव्य से भेदरूप होने से अशुद्धनय का विषय है।

क्षयोपशमसम्यक्त्व :- उपशमसम्यक्त्व प्राप्त करनेवाला जीव क्षयोपशमसम्यक्त्व प्रकट करता है। उपशमसम्यक्त्व में उपशम का पुरुषार्थ है, और क्षयोपशमसम्यक्त्व में क्षय-उपशम ऐसे दो शब्द हैं। लेकिन उसमें उपशम का पुरुषार्थ नहीं है, क्योंकि उसको अनुदयरूप (सद्वस्थारूप) उपशम है, उसमें पुरुषार्थ नहीं है। किंतु दर्शनमोहनीय आदि की सर्वघाति प्रकृति का उदयाभावीक्षय होता है। क्योंकि इसमें उसका पुरुषार्थ है। यह सब जीव को जानना चाहिये।

मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है कि उद्देश्य और लक्षण-निर्देष वस्तु का जानना चाहिये। उद्देश्य अर्थात् नाम और लक्षण शास्त्र-प्रमाण से जाने, किंतु इसके बाद विचार तो स्वयं करना चाहिए। यहाँ सम्यग्दर्शन का लक्षण बतलाते हैं उसका विचार स्वयं करना चाहिये।

क्षायिकसम्यक्त्व :- प्रथम तो कोई उपशमसम्यक्त्व प्राप्त किये बिना धर्म प्राप्त कर ही नहीं सकता। उपशम में से सीधा क्षायिकसम्यक्त्व नहीं होता। किंतु उपशम में से क्षयोपशम-सम्यक्त्व होता है और क्षयोपशम में से क्षायिकसम्यक्त्व होता है। वह क्षायिकसम्यक्त्व केवली भगवान अथवा श्रुतकेवली के समीप में होता है और यह सादि अनंत काल तक रहता है। श्रेणिक राजा ने अज्ञानता से नरक की आयु बाँधी, इसके बाद भगवान के निकट उपदेश सुना, अखंड आत्मा की प्रतीति हुई। उपशम, क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर फिर क्षायिकसम्यक्त्व

प्राप्त किया और तीर्थंकर नामकर्म प्रकृति का बंध किया। उनको बाह्यरूप से राजपाट रानियों वगैरह का त्याग नहीं था, लेकिन मिथ्यात्व का त्याग किया था।

यहाँ क्षायिक सम्यग्दृष्टि की बात चलती है। वह पर्याय है, द्रव्य से भेदरूप है, इसलिये अशुद्धनय का विषय है; लेकिन उसका विषय शुद्ध आत्मा है, इसलिये यह पर्याय ज्ञान करने के लिये है, आदरणीय नहीं है। त्रिकाली शुद्ध आत्मा आश्रय करनेयोग्य है।

तीन प्रकार के सम्यक्त्व की बात आ गयी, वह आत्मा के पुरुषार्थ से होता है। उसके उपाय बिना मुक्ति नहीं होती। ज्ञान की-उसी प्रकार चारित्र की पर्याय के भेद आ गये हैं। अब सम्यक्त्व की बात कही, इसलिये सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों आ गये हैं। उसके बिना जीव का कभी कल्याण होता नहीं है, और उसको धारण करने से नियम से मोक्ष होता है।

मोक्षमार्गप्रकाशक (पृष्ठ ३१५) में तीन कारण बताये हैं —

(१) कोई कारण तो ऐसे होते हैं जिनके हुए बिना तो कार्य नहीं होता और जिनके होने पर कार्य हो या न भी हो। जैसे—मुनिलिंग धारण किये बिना तो मोक्ष नहीं होता; परंतु मुनिलिंग धारण करने पर मोक्ष होता भी है और नहीं भी होता।

(२) कितने ही कारण ऐसे हैं कि मुख्यतः तो जिनके होने पर कार्य होता है, परन्तु किसी के बिना हुए भी कार्यसिद्धि होती है। जैसे—अनशनादि बाह्यतप का साधन करने पर मुख्यतः मोक्ष प्राप्त करते हैं; परंतु भरतादिक के बाह्यतप किये बिना ही मोक्ष की प्राप्ति हुई।

(३) कितने ही कारण ऐसे है जिनके होने पर कार्यसिद्धि होती ही होती है और जिनके न होने पर सर्वथा कार्यसिद्धि नहीं होती। जैसे—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता होने पर तो मोक्ष होता ही होता है; और उसके न होने पर सर्वथा मोक्ष नहीं होता।

ऐसे यह कारण कहे, उनमें अतिशयपूर्वक नियम से मोक्ष का साधक जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का एकीभाव सो मोक्षमार्ग जानना। अब जिसको सम्यग्दर्शन नहीं है, ऐसे भाव तीन प्रकार से कहते हैं :—

(१) मिथ्यात्व :- मिथ्यादृष्टि को नवतत्त्व की स्वतंत्रता की प्रतीति नहीं होती है। जीव को जीवपने, अजीव को अजीवपने, पुण्य-पाप आस्रव-बंध को जैसे हैं, वैसे जाने, संवर-निर्जरा को संवर-निर्जरारूप जाने और मोक्ष को मोक्ष जाने—इसप्रकार नवतत्त्व स्वतंत्र हैं। ऐसे

विपरीताभिनिवेशरहित जिसको श्रद्धा नहीं है, वह संसार में भटकता है।

(२) सासादन :- आत्मा का ज्ञान होने के बाद सम्यग्दर्शन को वमन करता हुआ नीचे गिरने की अवस्था का यह गुणस्थान है। इसमें अनंतानुबंधी का उदय है, लेकिन मिथ्यात्वदशा हुई नहीं है। जैसे—फल टूटने से जमीन पर न गिरे, उसकी तरह बीच की दशा दूसरे गुणस्थान की है।

(३) मिश्र :- मिश्रपरिणाम की दशा होती है। कोई सादिमिथ्यादृष्टि पहले गुणस्थान से तीसरे में आता है, और कोई सम्यक्त्व से च्युत हो चौथे से तीसरे में आता है, यह भी एक दशा है।

(१३) संज्ञीमार्गणा :- नारकी, मनुष्य, देव - मनवाले (सैनी) हैं, और तिर्यंच मन तथा मनबगैर के हैं। ऐसे दो भेद से विलक्षण आत्मा का लक्षण है। यहाँ भावमन की बात है। द्रव्यमन की बात नहीं है। मति-श्रुतज्ञान के क्षयोपशम की बात है।

शिक्षा और उपदेश ग्रहण कर सके इस क्षयोपशमवाले जीव का संज्ञी कहते हैं। और शिक्षा उपदेश को ग्रहण न कर सके ऐसे क्षयोपशमवाले जीव को असंज्ञी कहते हैं। संसारदशा में संज्ञीपना और असंज्ञीपना होता है; वह अवस्था का स्वभाव है, द्रव्यस्वभाव में संज्ञी-असंज्ञीपना कुछ भी नहीं है। शुद्धस्वभाव तो ज्ञायक एकरूप है और वह सम्यग्दर्शन का ध्येय है। आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति है। ऐसी दृष्टि बिना भावमन कार्यकारी नहीं है। एकसमय की पर्याय में संज्ञीपना है और स्वभाव में वस्तुपना है। एकसमय में पर्याय से असंज्ञीपना है और स्वभाव से वस्तुपना है। कोई जीव मार्गणास्थान बिल्कुल माने ही नहीं, उसको ये भेद समझाये जाते हैं, और कोई मार्गणास्थान के आश्रय से धर्म माने तब अस्वीकार करते हैं।

मित्र वीतराग सत्साहित्य बिक्री-केन्द्र

जयपुर : स्थानीय 'मित्र नवयुवक मंडल' द्वारा पर्यूषण पर्व में 'मित्र वीतराग सत्साहित्य बिक्री केन्द्र' का शुभारंभ श्री दिगम्बर जैन मंदिरजी सिवाड़, किशनपोल बाजार में किया गया व पर्यूषण पर्व में लगभग ११०० रुपये के सत्साहित्य की बिक्री हुई। आगे भी बारह ही माह यह बिक्री-केन्द्र चालू रहेगा। स्वाध्याय-प्रेमी मुमुक्षु लाभ उठावें।

— सुरेशचंद्र जैन, मंत्री

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

प्रश्न– आत्मा प्राप्त करने के लिये सारे दिन क्या करना ?

उत्तर– सारे दिन शास्त्र का अभ्यास करना, विचार–मनन करके तत्त्व का निर्णय करना, तथा शरीरादि से एवं राग से भेदज्ञान करने का अभ्यास करना। रागादि से भिन्नता का अभ्यास करते–करते आत्मा का अनुभव होता है।

प्रश्न– अभ्यास किसप्रकार का करना ?

उत्तर– शास्त्र वाँचन, श्रवण, सत्समागम करना चाहिये।

प्रश्न– यह सारा अभ्यास सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिये तो अकिंचित्कर है न ?

उत्तर– यद्यपि सम्यग्दर्शन आत्मा के लक्ष्य से ही होता है; तथापि स्वाध्याय, श्रवण, सत्समागम आदि का विकल्प आता ही है, उसमें परलक्षी ज्ञान निर्मल होता है। शास्त्र में अनेक स्थानों पर आता है कि आगम का अभ्यास करो, स्व के लक्ष से आगम का अभ्यास करो। जिसे आत्मा चाहिये उसे आत्मा के बतानेवाले देव–शास्त्र–गुरु के समागम का विकल्प आता ही है।

प्रश्न– उपयोग को कितना अंदर ले जाने से आत्मा का दर्शन होता है–आत्मा प्राप्त होता है ?

उत्तर– जो उपयोग बाहर में जाता है, उसे अंदर स्व में ले जाना है। उपयोग का स्व में ले जाना ही अंदर ले जाना कहा जाता है। उपयोग के स्व में ढलते ही आत्मा का दर्शन होता है।

प्रश्न– क्या आत्मा और राग का भेदज्ञान करना अशक्य है ?

उत्तर– नहीं, नहीं। यद्यपि आत्मा और राग की संधि अतिसूक्ष्म है, बहुदुर्लक्ष है, दुर्लभ है; तथापि अशक्य तो नहीं। ज्ञानोपयोग को अतिसूक्ष्म करने पर वह आत्मा लक्ष में आ सकता है। पंचमहाव्रत के परिणाम अथवा शुक्ललेश्यारूप कषाय की मंदता के

परिणाम अतिसूक्ष्म अथवा दुर्लक्ष नहीं हैं; किंतु आत्मा अतिसूक्ष्म है, अतः उपयोग अतिसूक्ष्म करने से आत्मा अनुभव में आता है।

प्रश्न– क्या खंड-खंड ज्ञान-इंद्रियज्ञान भी संयोगरूप है ?

उत्तर– हाँ! वास्तव में तो खंड-खंड ज्ञान भी त्रिकाली स्वभाव की अपेक्षा से संयोगरूप है। जैसे इंद्रियाँ संयोगरूप हैं वैसे वह भी संयोगरूप है। जिसप्रकार शरीर, ज्ञान से अत्यंत भिन्न हैं; उसीप्रकार खंड-खंड ज्ञान—इंद्रियज्ञान भी ज्ञायक से भिन्न है, संयोगरूप है, स्वभावरूप नहीं।

प्रश्न– सुखानुभव तो पर्याय में होता है तो फिर आत्मद्रव्य की महिमा क्यों गाई जाती है ?

उत्तर– अनुभव की शोभा वास्तव में आत्मद्रव्य के कारण ही है। आत्मद्रव्य कूटस्थ होने से यद्यपि अनुभव में नहीं आता, तथा अनुभव तो पर्याय का ही होता है; तथापि जब तक पर्याय द्रव्य को स्वीकार नहीं करती तब तक अनुभव होता नहीं। जहाँ पर्याय ने द्रव्य को स्कार किया वहीं उसकी शोभा है और वह आत्मद्रव्य के कारण ही है।

प्रश्न– पर्याय द्रव्य से भिन्न है कि अभिन्न ? और किसप्रकार ?

उत्तर– द्रव्य है वह पर्याय से भिन्न है। क्योंकि ध्रुव में तो पर्याय नहीं और पर्याय में ध्रुव आता नहीं अर्थात् ध्रुव पर्याय को स्पर्श करता नहीं। परंतु पर से भिन्न करने के लिये ऐसा कहते हैं कि द्रव्य की पर्याय है। किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि सामान्य द्रव्य और विशेषपर्याय यह दो धर्म एकरूप हो जाते हैं। यह दोनों धर्म अर्थात् सामान्यधर्म और विशेषधर्म एक-दूसरे को स्पर्श नहीं करते।

प्रश्न– व्रत-तप-त्याग के शुभभाव से आत्मा का मैल निकल जाता है क्या ?

उत्तर– नहीं, यह तो राग है; इसको अपना मानना मिथ्यात्व है, दोष है, भ्रम है।

प्रश्न– साधारण जीवों के लिये तो व्रतादि करना ही धर्म है न ?

उत्तर– साधारण जीवों के लिये भी यह व्रतादि के शुभभाव धर्म नहीं हैं, इनसे जन्म-मरण का अंत नहीं आता और यदि इनमें लाभ-बुद्धि की जाये तो जन्म-मरण बढ़ता है; धर्म तो एकमात्र वीतराग भाव ही है।

आत्मा कौन है और क्या कर सकता है तथा उसका स्वरूप क्या है, यह सब समझने का अभ्यास प्रथम करके आत्मज्ञान होता है; तत्पश्चात् व्रतादि का विकल्प आता है। आत्मा को समझे बिना यदि व्रतादि-क्रिया लाभ-बुद्धि से की जाये तो मिथ्यात्व की पुष्टि होती है।

प्रश्न- आत्मज्ञान हो जाने पर तो यह व्रतादि राग हैं, ऐसा भासित हो जाता है; परंतु प्रथम तो आत्मज्ञान जल्दी होता नहीं है न?

उत्तर- जल्दी का क्या अर्थ? इसका अभ्यास करना चाहिये कि राग क्या है? आत्मा क्या है? मैं त्रिकाल टिकनेवाली चीज़ कैसी हूँ? इत्यादि अभ्यास करके, ज्ञान करके, राग से भिन्न आत्मा का अनुभव करना—यह पहली वस्तु है। आत्मा को जाने बिना समस्त क्रियाकाण्ड व्यर्थ है। आत्मा अंदर आनंदस्वरूप भगवान चैतन्य का पुंज प्रभु है। उसका ज्ञान न हो, अंतर-दशा का वेदन न हो, तब तक उसका क्रियाकांड सब झूठा है। सम्यग्दर्शन प्राप्त करना दुर्लभ है। अतः सर्व प्रथम सम्यग्दर्शन प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये।

युगलजी एवं पंडित रतनचंदजी के प्रवचनों का विशेष आयोजन

जयपुर :- श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के वार्षिक कार्यक्रमों के अंतर्गत कार्तिक की अष्टाह्निका में दिनांक ८-११-१९७८ से दिनांक २०-११-७८ तक श्री युगलकिशोरजी 'युगल' कोटा के प्रवचनों का विशेष आयोजन किया गया है।

इसके पूर्व दिनांक १७-१०-७८ से २९-१०-७८ तक पंडित रतनचंदजी शास्त्री, संपादक, जैनपथ प्रदर्शक विदिशा से पधार रहे हैं। डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल तो यहाँ हैं ही।

बाहर से पधारनेवाले महानुभावों के लिये निःशुल्क आवास तथा सशुल्क भोजन की व्यवस्था है। बाहर से पधारनेवाले महानुभव तत्काल सूचित करें जिससे उनके आवास आदि की समुचित व्यवस्था की जा सके।

स्थानीय लोगों के लिये भी रात्रि-विश्राम के लिये व्यवस्था की जावेगी जिससे शहर से आनेवाले बंधु सायंकालीन व प्रातःकालीन दोनों प्रवचनों का लाभ उठा सकें।

— मंत्री, पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-४, बापूनगर, जयपुर-३०२००४

महापर्व दशलक्षण समाचार

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ की ओर से दशलक्षण महापर्व के अवसर पर लगभग १०० विद्वान प्रवचनार्थ भारतवर्ष के विभिन्न नगरों में भेजे गये थे। स्थान-स्थान से निरंतर समाचार आ रहे हैं, जिनमें विद्वानों द्वारा हुई धर्मप्रभावना की चर्चा के साथ-साथ सारे देश में एक आध्यात्मिक वातावरण पैदा कर देने के लिये पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रति अत्यंत श्रद्धा व्यक्त की गई है तथा स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट के प्रति आभार व्यक्त किया है। स्थानाभाव के कारण प्राप्त विस्तृत समाचारों को देना संभव नहीं है। अत: अभी तक प्राप्त समाचारों को अति संक्षेप में यहाँ दिया जा रहा है।

सोनगढ़ :- पूज्य गुरुदेव सुखशांति में विराजमान हैं। प्रात: तथा दोपहर में गुरुदेवश्री के प्रवचनों एवं रात्रिकालीन चर्चा के अतिरिक्त प्रात: खीमचंदभाई एवं रात्रि में युगलजी के प्रवचन होते थे। प्रतिदिन पूजन-विधान-भक्ति आदि के कार्यक्रम भी उत्साहपूर्वक चलते थे।

अहमदाबाद (गुज०) :- समाज के विशेष आग्रह पर अध्यात्मप्रवक्ता पंडित लालचंद अमरचंद मोदी, बम्बई से पधारे। दोनों समय समयसार तथा समयसार कलशटीका पर आपके अत्यंत मार्मिक प्रवचन हुए। आपके प्रवचनों में अपार जनसमूह उमड़ पड़ता था। रात्रि में तत्त्वचर्चा भी चलती थी। आपके पधारने से समाज में महती धर्मप्रभावना हुई।

फतेपुर मोटा (गुज०) :- अध्यात्मप्रवक्ता पंडित बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता के प्रात: मोक्षमार्गप्रकाशक पर, दोपहर में तत्त्वार्थसूत्र पर तथा रात्रि में दशधर्म पर बड़े ही तार्किक एवं सूक्ष्म प्रवचन चलते थे। भादों शुक्ला १५ को रथयात्रा का आयोजन किया गया। आत्मधर्म के अनेक ग्राहक बनाये गये। सभी कार्यक्रमों में समाज ने बड़े ही उत्साह से भाग लिया तथा आपके मार्मिक प्रवचनों का रसास्वादन किया।

अजमेर :- इस वर्ष पर्यूषण पर्व के मंगल अवसर पर डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल के पधारने से अभूतपूर्व आध्यात्मिक वातावरण बन गया। उनके प्रात:काल मोक्षमार्गप्रकाशक पर एवं सायं उत्तमक्षमादि दशधर्मों पर मार्मिक प्रवचन सर सेठ श्री भागचंदजी सोनी की नसियां में हुये। महिलाओं की कक्षा उनकी धर्मपत्नी ने ली और बालकों की कक्षा श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के छात्र श्री राकेशकुमार ने ली।

डॉ० साहब के प्रवचनों में हजारों की भीड़ इकट्ठी होती थी। स्थानीय लोगों के अतिरिक्त

नसीराबाद, किशनगढ़, पीसांगन आदि समीपस्थ नगरों से भी सैकड़ों लोग आपके व्याख्यान सुनने प्रतिदिन आते थे।

जयपुर, जसवंतनगर, इटवा, मंडला, सागर, जबलपुर जैसे सुदूरवर्ती नगरों से भी लगभग ५० व्यक्ति आये। राजस्थान के स्वास्थ्यमंत्री श्री त्रिलोकचंदजी जैन दिनांक १३-९-७८ को पधारे। उनका उद्‌बोधन भी प्रेरणादायक था।

इस अवसर पर मुमुक्षु मंडल की भी स्थापना की गयी है। प्रशिक्षण-शिविर लगाने का भी निर्णय लिया गया है, तदर्थ लगभग २५००० रुपये (पच्चीस हजार) के वचन भी प्राप्त हो गये हैं। आत्मधर्म के १३२ व जैनपथ प्रदर्शक के २५ ग्राहक बने। लगभग ६००० रुपये की धार्मिक साहित्य की बिक्री हुई। जनता की माँग पर दिनांक १६-९-७८ को श्री सत्यप्रसन्नसिंहजी भंडारी, अध्यक्ष, राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की अध्यक्षता में सार्वजनिक सभा भी हुई, जिसमें हजारों की संख्या में उपस्थिति थी। वहाँ डॉ० भारिल्लजी का अहिंसा पर सारगर्भित व्याख्यान हुआ।

अंत में अनेक वक्ताओं ने डॉक्टर साहब के प्रति अत्यंत आभार व्यक्त किया। सर सेठ श्री भागचंदजी सोनी ने कहा कि जो भी प्रवचन डॉ० साहब ने किये, वे बड़े ही मार्मिक एवं पूर्णत: सत्य थे। उन्होंने डॉक्टर साहब की भूरि-भूरि प्रशंसा की। **— मनोहरलाल जैन, एम.ए., एलएल.बी.**

कलकत्ता :- विदिशा से पंडित ज्ञानचंदजी पधारे। आपका नये जैनमंदिर में प्रतिदिन सुबह ८ से ९ तक मोक्षमार्गप्रकाशक पर तथा रात्रि में ८ से ९ तक दशलक्षणपर्व पर सूक्ष्म आध्यात्मिक विवेचन चलता था। आपकी प्रेरणा से लगभग १०००) रुपये का सत्‌साहित्य बिका तथा आत्मधर्म के ५० एवं जैनपथ प्रदर्शक के ५० ग्राहक बने। यहाँ चार वीतराग विज्ञान पाठशालाओं के संचालन हेतु १००४) रुपये प्राप्त हुए। साथ ही तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट की हजारों की पुरानी ऊगाई प्राप्त हुई और ४६००) रुपये नवीन प्राप्त हुए। आत्मधर्म के ग्राहकों को 'धर्म के दशलक्षण' पुस्तक भेंट में देने हेतु २५ हजार रुपये के वचन प्राप्त हुए। अंतिम दिन स्थानीय संस्थाओं की ओर से आपका अभिनंदन किया गया। **— वीरचंदभाई मोटाणी**

दिल्ली :-आगरा से पंडित नेमीचंदजी पाटनी पधारे। दिगम्बर जैन मंदिर मॉडलबस्ती में आपके दोनों समय अध्यात्मरस से ओत-प्रोत भावभीने प्रवचन हुए। समाज के विशेष आग्रह पर आपके कुछ प्रवचन लालमंदिर, जैन महिलाश्रम दरियागंज, जैन स्पोर्ट्स क्लब लाल किला, एवं दिगम्बर जैन मंदिर भारतनगर में भी आयोजित किये गये। इस अवसर पर लगभग ३०००) रुपये का

सत्साहित्य बिका एवं आत्मधर्म एवं जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बनये गये।

— सुरेन्द्रकुमार जैन, महामंत्री

एटा (उ०प्र०) :-विदिशा से पंडित रतनचंदजी भारिल्ल, संपादक, जैनपथ प्रदर्शक पधारे। दशलक्षण धर्म पर आपके सारगर्भित तात्त्विक प्रवचन हुए। आपके मार्मिक प्रवचनों से स्थानीय समाज विशेष प्रभावित हुई। महिलाओं की कक्षा उनकी धर्मपत्नी, प्रौढ़ों व किशोरों की कक्षा श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के छात्र श्रेयांसकुमार शास्त्री व सुदीपकुमार शास्त्री तथा छोटे बालकों की कक्षा पंडितजी के पुत्र शुद्धात्मप्रकाश ने ली। आत्मधर्म के ७ आजीवन, ४३ वार्षिक तथा जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बने। युवकों में विशेष प्रभावना हुई, फलस्वरूप अ० भा० जैन युवा फैडरेशन की शाखा स्थापित की गई। **— लक्ष्मीनारायण जैन**

जयपुर (राज०) :- भोपाल से ब्रह्मचारी पंडित हेमचंदजी 'हेम' पधारे। स्थानीय बड़े दीवानजी के मंदिर, तेरापंथी मंदिर, आदर्शनगर मंदिर एवं टोडरमल स्मारक भवन में आपके प्रवचनों का आयोजन किया गया। समयसार, मोक्षमार्गप्रकाशक एवं दशधर्मों पर हुए आपके प्रवचनों से समाज ने लाभ उठाया। इस अवसर खिंदुकाजी के मंदिर में जैन पत्र-पत्रिका प्रदर्शनी का आयोजन किया गया, जिसका उद्घाटन श्री त्रिलोकचंदजी जैन, स्वास्थ्य मंत्री, राजस्थान ने किया। आत्मधर्म एवं जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बनाये गये। श्री भैरोंसिंहजी शेखावत मुख्यमंत्री एवं त्रिलोकचंदजी जैन स्वास्थ्य मंत्री के सान्निध्य में क्षमापना पर्व मनाया गया। **— अखिल बंसल**

फिरोजाबाद (उ०प्र०) :- पंडित जवाहरलालजी विदिशा से पधारे। मोक्षमार्गप्रकाशक, तत्त्वार्थसूत्र एवं दशधर्मों पर आपके तीनों समय अध्यात्मरस से ओत-प्रोत प्रवचन हुए। आत्मधर्म के २५ आजीवन तथा अनेक वार्षिक ग्राहक बने। जैनपथ प्रदर्शक के भी अनेक ग्राहक बनाये गये। स्थानीय विद्वान पंडित ताराचंदजी के भी प्रवचन हुए। **— सूरजभान जैन**

मेरठ (उ०प्र०) :- दाहोद से पंडित कन्नूभाई पधारे। प्रतिदिन प्रात: समयसार कलशटीका पर, मध्याह्न समयसार पर और रात्रि में दशधर्मों पर आपके ओजस्वी आध्यात्मिक प्रवचन हुए। आपकी जिनेन्द्रभक्ति तथा पूजन की तन्मयता तो बस देखते ही बनती थी। इस अवसर पर बुकस्टाल भी लगाया गया तथा आत्मधर्म एवं जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बनाये गये। आपकी प्रेरणा से शिक्षण शिविर लगाने का निश्चय किया गया। **— हुकमचंद जैन**

कोटा (राज०) :- बड़ौत निवासी पंडित शिखरचंदजी पधारे। आपके तीनों समय समयसार, समयसार नाटक एवं छहढाला पर प्रवचन चलते थे। स्थानीय मुमुक्षु मंडल के नवयुवकों

ने बुकस्टाल लगाया, जिसमें लगभग ५३००) रुपये का सत्साहित्य बिका। आत्मधर्म के ४ आजीवन, १०० वार्षिक तथा जैनपथ प्रदर्शक के ८० ग्राहक बने। अ० भा० जैन युवा फैडरेशन की शाखा भी इस अवसर पर स्थापित की गयी। स्थनीय युवा-मंडलों द्वारा विभिन्न रोचक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये। — **लालचंद जैन**

नागपुर (महा०) :- कोथली से पंडित केसरीचंदजी 'धवल' पधारे। यहाँ पर आपके तत्त्वार्थसूत्र तथा रत्नकरण्ड श्रावकाचार पर लगभग २६ प्रवचन हुए। आत्मधर्म के ८ आजीवन तथा जैनपथ प्रदर्शक के २७ ग्राहक बने। दिनांक १७-९-७८ को पंडित ज्ञानचंदजी भी पधारे। आपके आध्यात्मिक रोचक प्रवचनों से समाज बहुत प्रभावित हुई। तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट को द्वितीय किस्त की राशि प्राप्त हुई। कुछ राशि नवीन भी मिली। — **निर्मलकुमार जैनी**

भूलेश्वर - बम्बई :- श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय जयपुर के मेधावी छात्र पंडित अभयकुमारजी शास्त्री, एम.कॉम. पधारे। तत्त्वार्थसूत्र, मोक्षमार्गप्रकाशक एवं दशधर्मों पर आपके हृदयग्राही प्रवचन हुए। भूलेश्वर के अतिरिक्त मलाड़ एवं घाटकोपर के जिन-मंदिरों में भी आपके प्रवचन हुए। इस अवसर पर आत्मधर्म एवं जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बनाये गये। — **मूलचंद पाटनी**

घाटकापेर - बम्बई :- सोनगढ़ से पंडित डाह्याभाई सी० मेहता पधारे। समयसार, मोक्षमार्गप्रकाशक एवं दशधर्मों पर आपके मार्मिक प्रवचन हुए। शंका-समाधान भी चलता था। घाटकोपर भजन मंडली द्वारा संवाद प्रस्तुत किये गये। सत्साहित्य भी अच्छी मात्रा में बिका। — **रसिकलाल धोलकिया**

नसीराबाद :- अजमेर पर्यूषण समाप्त कर स्थानीय समाज के आग्रह पर डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल एक समय के लिये नसीराबाद भी पधारे। यहाँ उनका बाजार में सार्वजनिक मंच से क्षमावाणी पर अत्यंत ही मार्मिक व्याख्यान हुआ। इस अवसर पर उनके द्वारा लिखित २००) रुपये का साहित्य बिका। आत्मधर्म एवं जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बने। इस अवसर पर अजमेर से भी अनेक बंधु पधारे थे। स्मरण रहे नसीराबाद से लगभग ३०-४० व्यक्ति प्रतिदिन अजमेर डाक्टर साहब का प्रवचन सुनने जाते थे। — **जतनलाल गदिया**

मदनगंज - किशनगढ़ :- अजमेर से लौटते हुए डॉ० भारिल्लजी एक समय के लिये मदनगंज-किशनगढ़ रुके। वहाँ आपका सारगर्भित प्रवचन हुआ। आत्मधर्म के अनेक ग्राहक बनाये गये।

सनावद (म०प्र०) :- श्री टोडरमल दिगम्बर जैनसिद्धांत महाविद्यालय, जयपुर के छात्र पंडित संतोषकुमारजी शास्त्री पधारे। तीनों समय आपके छहढाला, तत्त्वार्थसूत्र तथा मोक्षमार्गप्रकाशक पर हृदयग्राही प्रवचन होते थे। निकटवर्ती ग्राम बैडिया में भी आपके प्रवचनों का आयोजन किया गया। आत्मधर्म व जैनपथ प्रदर्शक के ग्राहक भी बनाये गये। **— सोनचरण जैन**

सोलापुर (महा०) :- श्री टोडरमल दिगम्बर जैनसिद्धांत महाविद्यालय, जयपुर के छात्र ब्रह्मचारी अभिनंदनकुमारजी शास्त्री पधारे। मोक्षमार्गप्रकाशक एवं दशधर्मों पर आपके प्रभावपूर्ण प्रवचन हुए। आत्मधर्म के १६ आजीवन ग्राहक बनाये गये। **— जीवराज हीराचंद जैन**

रांझी-जबलपुर (म०प्र०) :- श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय, जयपुर के छात्र पंडित राजकुमारजी शास्त्री के पधारने से समाज में नयी जागृति आयी। प्रतिदिन तीनों समय के प्रवचनों से समाज ने लाभ लिया। इस अवसर पर बुकस्टाल भी लगाया गया। आत्मधर्म के ६ आजीवन तथा ११ वार्षिक ग्राहक बनाये गये। **— अशोककुमार जैन**

तलोद (गुज०) :- श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय, जयपुर के छात्र पंडित जतीशचंद शास्त्री पधारे। प्रतिदिन तीनों समय समयसार, मोक्षमार्गप्रकाशक तथा दशधर्मों पर आपके सारगर्भित प्रवचन हुए। आत्मधर्म हिन्दी व गुजराती के अनेक ग्राहक बने।

— कांतीलाल केशवलाल शाह

राघौगढ़ (म०प्र०) :- पंडित टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय जयपुर के छात्र पंडित भानुकुमारजी पधारे। तत्त्वार्थसूत्र, मोक्षमार्गप्रकाशक एवं दशधर्मों पर आपके नियमित प्रवचन होते थे। आत्मधर्म और जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बनाये गये। आपकी प्रेरणा से अ० भा० जैन युवा फैडरेशन की शाखा भी स्थापित की गयी। **— ताराचंद भारिल्ल**

उज्जैन (म०प्र०) :- पंडित टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के छात्र पंडित कैलाशचंदजी 'अचल' पधारे। समयसार, तत्त्वार्थसूत्र और दशधर्मों पर आपके प्रवचन हुए। आपके सान्निध्य में नमकमंडी में विद्वानों की संगोष्ठी भी आयोजित की गयी। आत्मधर्म तथा जैनपथ प्रदर्शक के २५-२५ ग्राहक बने। आपकी प्रेरणा से अ० भा० जैन युवा फैडरेशन की शाखा गठित की गयी।

— दिनेश शाह

भोपाल (म०प्र०) :- सिवनी से पंडित उत्तमचंदजी पधारे। आपके आध्यात्मिक प्रवचनों से समाज में महती धर्मप्रभावना हुई। युवा फैडरेशन के सदस्यों द्वारा भजन प्रतियोगिता एवं वीतराग-विज्ञान पाठशाला के छात्रों द्वारा विविध सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किये गये। **— व्यवस्थापक**

नाई की मंडी-आगरा (उ०प्र०) :- मौ निवासी पंडित मक्खनलालजी पधारे। आपके प्रवचनों से अनेक भ्रांतियों का निराकरण हुआ। आत्मधर्म एवं जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बनाये गये। यहाँ से आप शमशाबाद एवं फिरोजाबाद भी गये। **— नेमीचंद जैन**

ताजगंज - आगरा (उ०प्र०) :- जयपुर से पंडित हेमचंदजी 'चेतन' पधारे। उनके तथा स्थानीय विद्वान श्री वीरेन्द्रकुमारजी के मोक्षमार्गप्रकाशक एवं दशधर्मों पर प्रवचन हुए। इस अवसर पर आत्मधर्म के १४ ग्राहक बने। **— डॉ० रामस्वरूप जैन**

छिंदवाड़ा (म०प्र०) :- भोपाल निवासी पंडित राजमलजी पधारे। प्रतिदिन ५ घंटे के नियमित कार्यक्रमों से समाज ने धर्मलाभ लिया। आत्मधर्म एवं जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बनाये गये। पाँच दिन के लिये पंडित ज्ञानचंदजी 'स्वतंत्र' भी पधारे। **— प्रबोधचंद जैन, एडवोकेट**

नमक की मंडी - आगरा (उ०प्र०) :- उदयपुर से पंडित देवीलालजी मेहता पधारे। नमक की मंडी के अतिरिक्त स्थानीय नाई की मंडी, छीपीटोला, कचहरी घाट आदि के मंदिरों में आपके प्रवचनों का आयोजन किया गया। आत्मधर्म के २५ एवं जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बनाये गये। लगभग ५० भाई-बहिनों ने पूज्य गुरुदेवश्री की अमृतवाणी सुनने सोनगढ़ जाने की इच्छा व्यक्त की। **— रिखबचंद जैन**

मवई (म०प्र०) :- पंडित जयकुमारजी ललितपुर वाले पधारे। मोक्षमार्गप्रकाशक एवं छहढाला पर आपके प्रवचन हुए। आपकी प्रेरणा से यहाँ वीतराग-विज्ञान पाठशाला की स्थापना हुई एवं आत्मधर्म के १८ और जैनपथ प्रदर्शक के १४ ग्राहक बने। **— पंडित फूलचंद जैन**

बकस्वाहा (म०प्र०) :- ललितपुर निवासी पंडित चंपालालजी पधारे। प्रतिदिन मोक्षमार्गप्रकाशक, रत्नकरण्डश्रावकाचार, लघु जैनसिद्धांत प्रवेशिका एवं दशधर्मों पर आपके प्रवचन हुए। आपकी प्रेरणा से यहाँ वीतराग-विज्ञान पाठशाला की स्थापना की गयी। **— किशोरीलाल जैन**

ललितपुर (उ०प्र०) :- इंदौर से पंडित प्रकाशचंदजी पधारे। आपके तीनों समय के प्रवचनों से समाज में अच्छी प्रभावना हुई। **— हजारीलाल टडैया**

मंडला (म०प्र०) :- मलकापुर से पंडित नेमीचंदजी सर्राफ पधारे। समयसार, मोक्षमार्गप्रकाशक, जैन सिद्धांत प्रवेशिका तथा दशलक्षण धर्म पर आपके प्रवचन हुए। आपके सदोपदेश से अनेक कुप्रथाओं का प्रचलन बंद हुआ। आत्मधर्म व जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बनाये गये। **— तेजराज जैन**

भीलवाड़ा (राज०) :- कुरावड़ से पंडित रंगलालजी पधारे। प्रतिदिन चारों समय विभिन्न स्थानों पर आपके प्रवचन हुए। आत्मधर्म के अनेक ग्राहक बनाये गये। **—अमोलकचंद जैन**

देवास (म०प्र०) :- श्री सेजमलजी जैन के सान्निध्य में पर्यूषण पर्व बड़े उत्साह से मनाया गया। आपके दोनों समय के प्रवचनों से समाज ने लाभ उठाया। **— राजेशकुमार पाटनी**

सहारनपुर (उ०प्र०) :- ब्रह्मचारी लाभानंदजी के पधारने से अच्छी धर्मप्रभावना हुई। दशलक्षण धर्म पर आपके आध्यात्मिक प्रवचन हुए। **— सोमनाथ जैन, सर्राफ**

खंडवा (म०प्र०) :- फतेपुर निवासी पंडित चंदूभाई मेहता पधारे। समयसार, तत्त्वार्थसूत्र, लघुजैनसिद्धांत प्रवेशिका तथा मोक्षमार्गप्रकाशक पर आपके सारगर्भित प्रवचन हुए। आत्मधर्म एवं जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बनाये गये। **— सीमंधर जैन**

बसमतनगर (महा०) :- पंडित दत्तोपंतजी लोखंडे के तत्त्वावधन में पर्यूषण पर्व सानंद संपन्न हुआ। दशलक्षणधर्म पर आपके प्रवचन एवं कक्षायें चलती थीं। आत्मधर्म हिंदी, मराठी, गुजराती तथा जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बनाये गये। **— रामभाऊ राजाराम महाजन**

जलगाँव (महा०) :- मलकापुर से पंडित रमेशभाईजी पधारे। आपके प्रवचनों से स्थानीय जैन-अजैन बंधुओं ने लाभ उठाया। **— सिद्धार्थ शाह**

भिण्ड (म०प्र०) :- इंदौर से पंडित हीरालालजी गंगवाल पधारे। प्रतिदिन समयसार कलश, परमात्मप्रकाश, तत्त्वार्थसूत्र, मोक्षमार्गप्रकाशक तथा दशधर्मों पर आपके आध्यात्मिक प्रवचन हुए। आत्मधर्म के त्रैवार्षिक १४ तथा ६ वार्षिक ग्राहक बनाये गये। **— इन्द्रसेन बजाज**

नरवर (म०प्र०) :- बीना से पंडित बाबूलालजी टोपीवाले पधारे। आपके आध्यात्मिक प्रवचनों से समाज ने लाभ उठाया। **— नेमीचंद जैन**

मुंगावली (म०प्र०) :- कुराबड़ से ब्रह्मचारी झम्मकलालजी पधारे। प्रतिदिन तत्त्वार्थसूत्र, मोक्षमार्गप्रकाशक, छहढाला एवं दशधर्मों पर आपके प्रभावपूर्ण प्रवचन हुए। अनेक भाई-बहनों ने नियमित स्वाध्याय करने का निर्णय लिया। **— अनिलकुमार जैन**

बडवाह (म०प्र०) :- ललितपुर निवासी पंडित रमेशकुमारजी शास्त्री पधारे। दशलक्षण धर्म पर आपके तात्त्विक प्रवचन हुए। बच्चों की कक्षायें भी चलायी गयीं। **—डॉ० महेन्द्रकुमार जैन**

बेगमगंज (म०प्र०) :- जवेरा से पंडित विनोदकुमारजी पधारे। लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका, छहढाला तथा दशधर्मों पर आपके मार्मिक प्रवचन हुए। आत्मधर्म के ३ आजीवन, १० वार्षिक तथा जैनपथ प्रदर्शक के १२ ग्राहक बनाये गये। **— चेतराम जैन**

बीना (म०प्र०) :- पंडित प्रहलादजी मंदसौर पधारे। आपके प्रवचन छहढाला, मोक्षमार्गप्रकाश तथा दशधर्मों पर हुए। आत्मधर्म एवं जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बने।

— बाबूलाल जैन 'मधुर'

डोंगरगाँव (म०प्र०) :- लोहारदा से पंडित छगनलालजी पधारे। आपके आध्यात्मिक प्रवचनों से समाज को अपूर्व लाभ मिला। श्री विमलप्रकाशजी अजमेरा डिप्टी कलेक्टर दुर्ग की अध्यक्षता में क्षमावाणी पर्व मनाया गया। **— हुकमचंद जैन**

चंदेरी (म०प्र०) :- उज्जैन से पंडित प्रदीपकुमारजी झांझरी पधारे। दोनों समय आपके सारगर्भित प्रवचन हुए। आपकी प्रभावना से स्वाध्याय मंडल की स्थापना हुई। **—गेंदालाल सर्राफ**

शाहगढ़ (म०प्र०) :- बड़ौत निवासी पंडित धर्मदासजी पधारे। छहढाला, मोक्षमार्ग प्रकाशक, लघु जैनसिद्धांत प्रवेशिका तथा दशधर्मों पर आपके तात्त्विक प्रवचन हुए।

— मंत्री, जैन पंचायत कमेटी

रखियाल (गुज०) :- उज्जैन से पंडित बेलजीभाई पधारे। आपके प्रवचनों से समाज ने अपूर्व लाभ लिया। आत्मधर्म के ११ तथा जैनपथ प्रदर्शक के ९ ग्राहक बनाये गये।

—गाँधी मांगीलाल केशवलाल

नकुड़ (उ०प्र०) :- अ० भा० जैन युवा फैडरेशन की स्थानीय शाखा ने दशलक्षणपर्व बड़ी धूमधाम से मनाया। इस अवसर पर सांस्कृतिक कार्यक्रम भी आयोजित किये गये।

— विजेन्द्र 'संत'

करेली (म०प्र०) :- अलीगंज से पंडित गंभीरचंदजी वैद्य पधारे। प्रतिदिन तत्त्वार्थसूत्र, छहढाला, मोक्षमार्गप्रकाशक तथा दशधर्मों पर आपके प्रवचन हुए। समाज में अच्छी प्रभावना हुई।

— ज्ञानचंद जैन

सेलू (महा०) :- इंदौर से श्री पूनमचंदजी छाबड़ा पधारे। मोक्षमार्गप्रकाशक तथा दशलक्षण धर्म पर आपके प्रतिदिन प्रवचन चलते थे। **— ताराचंद काला**

सागर (म०प्र०) :- स्थानीय विद्वान पंडित मुन्नालालजी रांघेलीय के दोनों समय समयसार की ४७ शक्तियों, तत्त्वार्थसूत्र एवं मोक्षमार्गप्रकाशक पर अपूर्व प्रवचन हुए। श्रोताओं की अच्छी उपस्थिति रहती थी। इस अवसर पर सोनगढ़ से प्रकाशित साहित्य की अच्छी बिक्री हुई।

— मन्नूलाल जैन, एडवोकेट

खातेगाँव (महा०) :- इंदौर से ब्रह्मचारी परसरामजी तथा विदिशा से पंडित शुभचंदजी पधारे। पंडित शुभचंदजी के मोक्षमार्गप्रकाशक पर तथा ब्रह्मचारी परसरामजी के तत्त्वार्थसूत्र तथा

दशधर्मों पर प्रवचन चलते थे। आत्मधर्म के २० तथा जैनपथ प्रदर्शक के २३ ग्राहक ग्राहक बनाये गये। — छगनलाल सेठी

रतलाम (म०प्र०) :- पंडित मणीभाई मुनाईवाले पधारे। आपका मोक्षमार्गप्रकाशक, मोक्षशास्त्र, लघु जैनसिद्धांत प्रवेशिका तथा दशधर्म आदि विषयों पर विशद् विवेचन हुआ। आपके उपदेश से संकलित चार हजार रुपये की राशि का साहित्य घर-घर में पहुँचाना निश्चित हुआ।

— मोहनलाल छाबड़ा

करहल (उ०प्र०) :- कोटा निवासी पंडित रामकिशोरजी पधारे। आपके प्रवचनों से प्रभावित होकर आत्मधर्म के २ आजीवन तथा २० वार्षिक और १२ जैनपथ प्रदर्शक के ग्राहक बने। इस अवसर पर ५०० रुपये का सत्साहित्य भी बिका। — वीरेन्द्रकुमार जैन 'कुमुद'

खनियाधाना (म०प्र०) :- पंडित शांतिकुमारजी मौ वालों के १० दिन तक मोक्षमार्गप्रकाशक पर अत्यंत मार्मिक एवं गंभीर प्रवचन हुए। स्थानीय समाज ने अपूर्व लाभ लिया।

— नेमीचंद्र 'भारती'

इटारसी (म०प्र०) :- पंडित बाबूलालजी अशोकनगर वालों के पधारने से समाज में उत्साह का वातावरण रहा। प्रतिदिन प्रवचन, पूजन, विधान एवं भक्ति के साथ-साथ कक्षाओं का भी आयोजन किया गया। कुछ समय से बंद पाठशाला पुनः प्रारंभ करने का संकल्प किया। — राजधर जैन

डबोक (राज०) :- पंडित मोतीलालजी करेली एवं जानकीप्रसादजी सागरवाले पधारे। मोक्षमार्गप्रकाशक, तत्त्वार्थसूत्र एवं दशधर्मों पर हुए प्रवचनों से समाज में व्याप्त अनेक भ्रांतियाँ निकल गयीं। आत्मधर्म एवं जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बनाये गये।

— रणजीतलाल शिवलाल सिंघवी

अलोद (राज०) :- मंदसौर से पंडित रिखबचंदजी पधारे। मोक्षमार्गप्रकाशक पर हुए आपके प्रवचनों से समाज ने अपूर्व लाभ लिया। आत्मधर्म के १० ग्राहक बने। — बाबूलाल जैन 'स्नेही'

मौ (म०प्र०) :- बेगमगंज से पंडित कस्तूरचंदजी पधारे। तीनों समय मोक्षमार्गप्रकाशक, तत्त्वार्थसूत्र तथा दशलक्षण धर्म पर आपके मार्मिक प्रवचन हुए। पूजन-विधान तथा भक्ति के अतिरिक्त दोपहर में छहढाला की क्लास भी चलती थी। युवा फैडरेशन के युवकों को भी संबोधित किया। कुछ समय से बंद वी०वि० पाठशाला पुनः प्रारंभ की गयी। आत्मधर्म एवं जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बने। — पूरनचंद जैन

दाहोद (गुज०) :- अशोकनगर निवासी पंडित अमोलकचंदजी 'बंधु' पधारे। आपके

आध्यात्मिक प्रवचनों से समाज में अच्छी धर्मप्रभावना हुई। — चंद्रकांत कन्हैयालाल

मुंगावली (म०प्र०) :- ब्र० पंडित झम्मकलालजी कुराबड़वाले पधारे। आपके आध्यात्मिक प्रवचनों से समाज ने लाभ उठाया। अनेक भाई-बहिनों ने नियमित स्वाध्याय का संकल्प किया। — अनिलकुमार

मालथोन (म०प्र०) :- ब्रह्मचारी बाबूलालजी बरायठावाले पधारे। तत्त्वार्थसूत्र, लघु जैनसिद्धांत प्रवेशिका, छहढाला तथा दशधर्मों पर आपके धाराप्रवाह प्रवचन हुए, जिससे समाज में विशेष जागृति हुई। आत्मधर्म के ११ नवीन ग्राहक बनाये गये। — निर्मलकुमार चौधरी

अलवर (राज०) :- भोपाल निवासी ब्रह्मचारी हेमराजजी पधारे। तीनों समय आपके प्रवचन बहुत ही रोचक शैली में हुए। एक दिवस के लिये आप बड़ौदा भी पधारे। आत्मधर्म के २ आजीवन तथा २६ वार्षिक ग्राहक बने। — कमलचंद जैन

लकड़वास (राज०) :- श्री मांगीलालजी अग्रवाल, आनरेरी निरीक्षक, श्री वी० वि० परीक्षा बोर्ड, उदयपुर से पधारे। छहढाला, मोक्षमार्गप्रकाशक, समयसार कलश तथा दशधर्मों पर आपके प्रवचन हुए। जैन-अजैन सभी ने आपके प्रवचनों की सराहना की। — लक्ष्मीलाल जैन

गुना (म०प्र०) :- पर्यूषणपर्व के अवसर पर पंडित चिमनभाई पधारे। समयसार, लघु जैनसिद्धांत प्रवेशका तथा मोक्षमार्गप्रकाशक पर आपके गंभीर प्रवचन चलते थे। आपसे समाज को अच्छा धर्मलाभ मिला। — अरुणकुमार जैन

लोहारदा (म०प्र०) :- इंदौर से पंडित दीपचंदजी पधारे। तीनों समय समयसार, छहढाला तथा दशधर्मों पर आपके प्रवचनों का आयोजन किया गया। — मानिकचंद पाटोदी

बरेली (उ०प्र०) :- सहजपुर से श्री कोमलचंदजी पधारे। मोक्षशास्त्र, मोक्षमार्गप्रकाशक, छहढाला, जैनसिद्धांत प्रवेशिका तथा दशलक्षणधर्म पर आपके प्रवचन हुए। — जीवनलाल जैन

बासौदा (म०प्र०) :- सागर निवासी पंडित ताराचंदजी सर्राफ पधारे। आपके आध्यात्मिक प्रवचनों से श्रोतागण काफी प्रभावित हुए। — नेमीचंद जैन

लाड़कुई (म०प्र०) :- स्थानीय पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन चैत्यालय में दशलक्षण पर्व सानंद मनाया गया। निकटवर्ती ग्रामों के जैन भाईयों ने भी यहाँ आकर धर्मलाभ लिया। — एस० के० सिंघई

गंजबासौदा (म०प्र०) :- सागर से पंडित ताराचंदजी सर्राफ पधारे। अध्यात्मवाणी, तत्त्वार्थसूत्र, रत्नकरंडश्रावकाचार तथा दशधर्म पर आपके प्रवचनों का आयोजन किया गया।

— गयाप्रसाद जैन

मलकापुर (महा०) :- अशोकनगर से पंडित धर्मचंदजी शास्त्री पधारे। आपके तत्त्वनिर्णयोन्मुख प्रवचनों से समाज बहुत प्रभावित हुआ। — **प्रेमचंद निरखे**

गजपंथाजी (महा०) :- ब्रह्मचारी रावजीभाई जीवराज शाह के सान्निध्य में पर्यूषणपर्व सानंद संपन्न हुआ। तत्त्वार्थसूत्र पर आपके प्रवचनों से समाज ने लाभ उठाया। सोलापुर से लौटते हुए पंडित ब्रह्मचारी अभिनंदनकुमारजी भी यहाँ पधारे। यहाँ पर आपके चार प्रवचन हुए।

— **शांतिकुमार लुहाड्या**

वीतराग-विज्ञान पाठशाला की स्थापना

दमोह :- पंडित भगवानदासजी की प्रेरणा से दिनांक २१-९-७८ को स्थानीय दिगम्बर जैन सेठजी के मंदिर में वीतराग-विज्ञान पाठशाला की स्थापना की गयी। पाठशाला की कमेटी का गठन हुआ तथा श्री सुरेशचंदजी जैन को अध्यापन हेतु नियुक्त किया। — **लक्ष्मीचंद जैन**

कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट को योगदान

सोनगढ़ शिक्षण शिविर के अवसर पर कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट को निम्न प्रकार योगदान प्राप्त हुआ:-

१. श्री केशवलाल गुलाबचंद शाह, दहेगाम	११००१) रुपये
२. श्री युगलकिशोरजी 'युगल', कोटा	१०००१) रुपये
३. श्री मीठालाल मगनलाल मेहता, फतेपुर	२५०१) रुपये

इसके साथ ही ५०००) रुपये फुटकर प्राप्त हुये। — **बाबूभाई मेहता**

अ० भा० जैन युवा फैडरेशन के तत्त्वावधान में श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के छात्रों द्वारा अनोखा शिक्षण-शिविर

जयपुर :- अ० भा० जैन युवा फैडरेशन के तत्त्वावधान में श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के छात्रों द्वारा दिनांक ३-१०-७८ से १२-१०-७८ तक जयपुर नगर एवं जयपुर नगर की विभिन्न कॉलोनियों में लगभग १० स्थानों पर एक अनोखा शिक्षण-शिविर लगाया जा रहा है। शिविर में प्रवचनों के साथ-साथ बच्चों, प्रौढ़ों व महिलाओं की कक्षाएँ भी संचालित की जा रही हैं। विस्तृत समाचार अगले अंक में दिये जायेंगे। — **अखिल बंसल, महामंत्री**

जीवन ही बदल डाला

[इस स्तंभ में उन आत्मार्थियों के महत्त्वपूर्ण पत्र प्रकाशित किये जायेंगे, जिनके जीवन में आध्यात्मिक रुचि आत्मधर्म के माध्यम से जगी है।]

आत्मधर्म ने तो मेरी जीवनचर्या ही बदल डाली है। प्रातः भ्रमण त्यागकर स्वाध्याय करना तथा रात्रि में मित्र-मंडली त्यागकर स्वाध्याय करना मेरी जीवनचर्या के विषय बन गये हैं। विगत ५-६ वर्ष से आत्मधर्म का नियमित ग्राहक हूँ। इसके स्वाध्यायोपरांत परिणाम यह निकला कि मेरी चिकित्सा विज्ञान की पुस्तकें रखी-रखी धूल खा रही हैं। उनको दीमक से सुरक्षित रखने की भी इच्छा नहीं होती है।

आत्मधर्म (हिंदी) पहले से ही अध्यात्मरस से ओतप्रोत तो था ही, लेकिन आपकी परिमार्जित शैली में तर्कात्मक विकास के साथ-साथ और भी प्रखर हो गया है।

'त्यागधर्म' पर विवेचन पढ़कर अत्यंत संतोष एवं हर्ष हुआ। यदि इसीप्रकार विवेचनात्मक शंखनाद होता रहा तो समाज को गलत मार्गदर्शन करनेवाली तूतियाँ शीघ्र ही बंद हो जायेंगी। आत्मधर्म की तथा आपकी प्रखर प्रतिभा की जो छाप मेरे दिलोदिमाग पर अंकित हो गयी है, उसे शब्दों में व्यक्त करना उसीप्रकार असंभव है—जिसप्रकार गूंगे के द्वारा श्रीखंड हलवा के स्वाद को मुख से व्यक्त करना।

अंत में इसी इच्छा के साथ विराम लेता हूँ कि यदि अशुभकर्म के निमित्त से मुझे पूज्य स्वामीजी के दर्शनों का नियमित सौभाग्य प्राप्त न हो सके तो आपकी प्रतिभासंपन्न शैली में आत्मधर्म का स्वाध्याय करने का पुण्य-योग तो निरंतर प्राप्त होता रहे।

डॉ० प्रीतमचंद जैन, आर०एम०पी०, पुरानी शिवपुरी (म०प्र०)

सावधान!!

विश्वस्त सूत्रों द्वारा ज्ञात हुआ है कि कई स्थनों पर कुछ न्यूज एजेंसियाँ अवैध रूप से आत्मधर्म का चंदा एकत्र कर रही हैं। समाज ऐसे लोगों से सावधान रहे तथा आत्मधर्म का चंदा विद्वानों, मुमुक्षु भाईयों, परिचित एवं विश्वस्त व्यक्तियों के पास ही जमा करावें। यदि आप किसी गलत व्यक्ति को चंदा दे देते हैं और आपका चंदा हमारे कार्यालय को प्राप्त नहीं होता है तो हमारी कोई जवाबदारी नहीं रहेगी। **— प्रबंध संपादक**

Registration. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन *

मोक्षशास्त्र	१२-००
समयसार	१२-००
समयसार पद्यानुवाद	०-७०
समयसार कलश टीका	६-००
प्रवचनसार	१२-००
पंचास्तिकाय	७-५०
नियमसार	५-५०
नियमसार पद्यानुवाद	०-४०
अष्टपाहुड़	१०-००
समयसार नाटक	७-५०
समयसार प्रवचन भाग १	६-००
समयसार प्रवचन भाग २	प्रेस में
समयसार प्रवचन भाग ३	५-००
समयसार प्रवचन भाग ४	७-००
आत्मावलोकन	३-००
श्रावकधर्म प्रकाश	३-५०
द्रव्यसंग्रह	१-५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-४०
प्रवचन परमागम	२-५०
धर्म की क्रिया	२-००
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३	१-५०
तत्त्वज्ञान तरंगिणी	५-००
अलिंग-ग्रहण प्रवचन	१-६०
वीतराग-विज्ञान भाग ३ (छहढाला पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)	१-००
बालपोथी भाग १	०-६०
बालपोथी भाग २	प्रेस में
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	४-००
बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०
बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०
बालबोध पाठमाला भाग ३	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	१-२५
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-२५
जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २	३०-००

मोक्षमार्गप्रकाशक		प्रेस में
पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व		१०-००
तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ		५-००
" " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)		२-००
मैं कौन हूँ ?		१-००
तीर्थंकर भगवान महावीर		०-४०
वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर		०-२५
अपने को पहचानिए		०-५०
अर्चना (पूजा संग्रह)		०-४०
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)		०-५०
पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य		०-६५
कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य		०-३०
सत्तास्वरूप		१-७०
सुंदरलेख बालबोध पाठमाला भाग १		प्रेस में
अनेकांत और स्याद्वाद		०-३५
युगपुरुष श्री कानजीस्वामी		१-००
वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका		३-००
सत्य की खोज (भाग १)		२-००
आचार्य अमृतचंद्र और उनका पुरुषार्थसिद्धयुपाय	साधारण :	२-००
	सजिल्द :	३-००

Licence No.
P. P. 16-S.S.P. Jaipur City Dn.
Licensed to Post
Without Pre-Payment

If undelivered please return to :
प्रबन्ध-संपादक, आत्मधर्म
ए-४, टोडरमल स्मारक भवन, बापूनगर
जयपुर ३०२००४